

कभी पढा था कि वह भी
 क्या कविता और वह भी क्या वनिता
 जो 'पदवि'यासमात्रेण'
 देखने वाले का हृदय न हर ले
 ऐसा ही होता है पहाड़ी घस्यारी का पदवि'याम
 उसके काले इटैलीन के जीण सहर्ग की
 मक्लीबेल की अलौकिक भक्त की आभा
 अपने पाठको तक पहुंचाने में
 मेरी लेखनी को
 प्रयास नहीं करना पड़ता
 अलकापुरी की वह उवशी
 बकरियों के साथ-साथ उनका भी
 मन हावती चली जाए
 यह मैं प्राणपण से चेष्टा करती रही हूँ
 मरे लिए अतीत के गम से
 भावते वे सुंदर चेहरे अब और भी
 अमूल्य बन उठे हैं ।'

मेरी प्रिय कहानियां

शिवानी



सरस्वती विहार

२१, दयानन्द मार्ग, दरियागज

नई दिल्ली-११०००२

मूल्य सात रुपये (7 00)

दूसरा संस्करण 1974

गिवानी

प्रकाशक सरस्वती विहार, दरियागञ्ज, दिल्ली

मुद्रक रायमोना प्रिंटरी, दिल्ली

MERI PRIYA KAHANIYAN by Shivanj

भूमिका

कुमाउनी होने पर भी, विधाता ने मुझे कुमायूँ में जन्म लेने के सौभाग्य से वंचित रक्खा। मेरा जन्म हुमा सीराष्ट्र में और उसी स्नेही मातृवत् धाय माँ की छत्रछाया मेरे शीर्ष पर बनी रही, किन्तु बँधोय में मुझ एक बार अपनी बिछुड़ी जन्मभूमि मिल गई। यह प्रायः ही देखा गया है कि जननी की किसी आकस्मिक सबी बीमारी के कारण, प्रसूतावस्था में उससे विलग किया गया शिशु जब एक बार फिर उसकी गोद में लौटता है तो जननी एवं शिशु दोनों का एक दूसरे के प्रति माहृ द्विगुणित हो जाता है। सहमी जननी, अपनी एक बार की बिछुड़ी सतान को, किसी शकालु दाखामुगी की ही भाँति दिन रात छाती से चिपकाए फिरती है। उस भयमस्त जननी की श्वास प्रश्वास छाती से चिपके शिशु की ही श्वास प्रश्वास बन उठती है।

ऐसा ही शायद मेरे साथ भी हुआ है और इसीसे यदि मेरी कहानियों में, मेरे उपमाओं में कुमायूँ के प्रति मेरे मोह का स्वर रह रहकर सुवर हो उठता है तो मुझे आश्चर्य नहीं होता। किन्तु मेरे आलोचकों की दृष्टि में मेरा यही सबसे बड़ा दोष है। क्यों मेरी प्रत्येक रचना कुमायूँ के ही सूर्योदय एवं सूर्यास्त तक सीमित रहती है? क्यों मेरी प्रत्येक नायिका अपरूप सुंदरी होती है? क्यों उसके उठे कपोला पर पिपिले सुवर्ण की पीताभा निरंतर चमकती चली जाती है? क्या यह दुहराव नहीं है? मैं नहीं कह सकती कि मेरे पाठकों को भी यह दुहराव लगता है या नहीं। मेरे लिए तो कुमायूँ के प्रत्येक सूर्योदय एवं सूर्यास्त की निजी मौलिकता है। जिस परिवेश में मैं रही हूँ जहाँ मैंने सिर पर घास के अशक्य बोझ की गरिमा वहन करती सुंदरी ग्राम्या के अलस पद बियास को दिन रात देखा है, वहाँ क्या मुझे एक बार भी वासीपन की गंध घाई है?

कभी पढ़ा था कि वह भी क्या कविता और वह भी क्या यनिता, जो 'पद बियासमात्रेण' देखनेवाले का हृदय न हर ले। ऐसा ही तो होता है, पहाड़ी घट्यारी का पदबियास। उसने वाले इटैलीन के जीणसहगे की भवलीवेस की अलौकिक भलक की आभा अपने पाठकों तक पहुँचाने में मेरी लखनी की प्रयास नहीं करता पठता। अलकापुरी की वह उवशी, बकरियों के साथ साथ उनका भी मन हावनी चली जाए, यह मैं प्राणपण से चेष्टा करती रही हूँ। मेरे लिए तो अतीत के गम से आवृत्ते के सुंदर चेहरे अब और भी अभूत बन उठे हैं। सघ

पूछिए, तो सूँ के मूलधन की भाँति मैं उसे यत्न से सँतती रहती हूँ, क्योंकि सुंदर चेहरा अब बड़े भाग्य से देखन को मिलता है । कभी कभी सोचती हूँ कि क्या विधाता न अब सुंदर चेहरे गढ़ने ही छोड़ दिए हैं ? सिनेमा से निकल रही भीड़ में, बस में, ट्रेन में, शादी ब्याह के जलसे में, क्यों दूढ़ने पर भी एक आध ऐसा चेहरा नहीं जुटता, जिसे देखकर आँखें ठंडा सकेँ ?

लगता है वह विराट प्रकृत शिल्पी भी रवि वर्मा के से चित्र नहीं आकृता । उसकी आधुनिक रुचि भी अब ऐस्टेटिक्ट आर्ट की ओर ढलने लगी है ।

त्रिपुरसुंदरी के मंदिर शीप को चूमती, उत्तराखंड की सूपरशिम, यदि जाने भ्रनजान मेरी लसनी को भी चूमती चनी गई है तो दोष मेरा नहीं, प्रकृति का है । कुमायू का प्रत्येक शिलाखंड प्रत्येक द्रम विद्रुम, प्रत्येक गिरिशृंग, जिस अलौकिक आभा से आलिंगित है उसमें वही भी मुझे कोई बदयता या ग्लानि नहीं दिखती ।

जब भी कहानी निम्नने बैठनी हूँ स्मृतियों के जलप्रपात पर यत्न से घरी गरीयसी शिला कोई अदृश्य शक्ति उठाकर दूर पटक देती है, और वह तीव्र फुहार मेरे कागज पत्र मेरी लेखनी और स्वयं मुझे आपादमस्तक सारावार कर छोड़ जाती है । मेरी अधिनाश कहानियों और उपवासों के पात्रों की सृष्टि इसी पावन जलघार से अभिषिक्त हुई है । आज स कोई सत्रहवय पूव में अल्मोडा में थी और हमारे बगले से कुछ ही दूर पर था, मुष्ठाधम । पास ही में एक बहुत बड़ा गिरजा घर था जिसके पत्थर पट्टे, ठेठ पहाड़ी ढग से बन प्राणन में मेरे कशोय की कुछ सुबद स्मृतियाँ भी पटपर दबी थी । उसी गिरज से लगी ककरवाली कोठी में दो वर्षों तक प्रत्येक प्रोप्मावकांग व्यतीत करने गुरुदेव गातिनिवेतन से चले आते थे । साथ में रहनी बौठान (प्रतिमा देवी ठाकुर), उनकी दोनों पौत्रिया नदिता और नदिनी । हमारा सारा दिन उन दिना वहाँ बीतता था । नदिनी के साथ उसी गिरजे की सीढ़ियाँ पर हमने न जान कितनी पिवनिव की, नितना होमयव एकसाथ निबटाया और कितने गाने गाए । रबीन्द्र संगीत से गुजनवाला वह सम्भवत समारवा एकमात्र गिरजाघर था । पास ही में एक चाय की दूकान थी, जहाँ स एक बार मृगषत्री लकर खान में नन्दिनी की नेपाली आया न हम घुरा तरह पटरारा था

“नवरदार जो उन दूकान से कुछ लेकर लाया । देखती नहीं, कितने बोझी बहा बैठे चाय पी रहे हैं ? कोठिया की दूकान है वह ”

कितने वर्षों पश्चात् भाग्य मुझे एक बार फिर उसी दूकान पर लीच लाया । प्राय ही मैं उन सड़क पर टहलन निकल जाती । एक तीखा उतार अब भी उसी ढलान में मुकनश्वर की ओर उतर गया था और सामन गागर, मुकनश्वर आगरी की उत्तुप श्रेणियाँ वस ही मूलदस्त सी बधी थी । याद और था वही घिरपरिघित

गिरजाघर और नीचे घाटी में बिसरे कुष्ठाश्रम की टोम की बैरक सब भी वही थी। दूकान पर बालित लगी केतली में उबलती चाय की प्रतीक्षा में ठूठ से हाथों में मग धामे भाग्यहीन ग्राहकों को पहचानने में भी मुझे विलम्ब नहीं हुआ।

उसी कुष्ठाश्रम में दाहिम तरफ तले एक सीलह सनह वर्ष की अपरूप सुंदरी किशोरी को मैं प्रायः एक ही भगिमा म खड़ी नित्य देखती। दोना हाथ पीछे बांधे, वह तबगी पेढ से पीठ टिकाए अपनी पिगलवर्णी जमकनी आटा म अपार कौतूहल का अध्य सजोए घड़ी के काटे के साथ मेरी प्रतीक्षा में खड़ी रहती। मेरा कौतूहल भी उससे कुछ कम नहीं था। वह कौन होगी ? क्या इस कच्ची बगस में ही इस महारोग ने इमने जीवन में विष घोल दिया था या वह किसी कम चारी की पुत्री थी ? कई बार निकट से देखन पर भी मुझे उसके शरीर में कहीं भी उस रोग का चिह्न नहीं दिखा। आखिर एक दिन मैं उससे पूछ ही लिया, "क्या तुम यही रहती हो ?"

मेरा प्रश्न सुनते ही वह मुझे अचरज से देखती रही, भयभीत मूगी सी उसकी वह विस्फारित दृष्टि में आज भी नहीं भूल सकी हू। शायद उसने नहीं सोचा था कि मैं पहाड़ी हू कुछ पल तक, मुझे ऐसे ही देखती वह सहसा तेजी से भागकर उही टोम की बैरक में घुसकर अदृश्य हो गई।

मेरे प्रश्न का उत्तर मिला मुझे तीसरे दिन। किसी दूसरे कुष्ठाश्रम की ही एक विदेशी मिशनरी महिला वही बगला लेकर रहन आई थी। मदबहुल शरीर स्वच्छ सरल हसी और महा आनंदी स्वभाव की उस महिला से मेरे एक दिन का परिचय शास्त्र ही मंत्री में बदल गया। वह स्वयं बयान कर थी। इही भाग्यहीन रोगियों की निःस्वाय सेवा में उन्हें स्वयं इस भयानक रोग का उपहार दे दिया था, किंतु अपनी ही चिकित्सा से वे अब पूण रूप से स्वस्थ थी। उहीन मुझे सुंदरी किशानुली की कथन कथा सुनाई थी।

उसका बचपन एक बार उसकी महीना से नासूर बन गई पैर की अंगुली दिखाने उसे अलमोडा लाया और डाक्टर ने देखते ही रोग के कुटिल शत्रु को पकड़ इस बंदीगृह में भेज दिया था। उसका बाका जवान पति लाम पर लड़ाई में था। जब लौटा तो सुग—उसकी बालिका बच्ची को बिधि ने ऐसे लौहकपाटो में मूद दिया है, जहां प्रेम का प्रवेश संभव निषिद्ध है। स्वस्थ होकर लौटने पर भी समाज उसे कभी ग्रहण नहीं कर सकता। परिस्थितियों से समझौता कर वह एक बार फिर नोशा बन सेहरे की झिलमिल समालता तिब्बती लहू छोड़े पर आईना देवता उसी उतार से गुजरा, जहां बारात की तुतुरी रणसींगी सुन भोली किशानुली भागकर दाहिम तले खड़ी हो गई थी। अपने बूढ़े बचपन, बाघ बनरी खेलनेवाले सखा देवर और लाल झुपरी अयालवाले समुशल के लहू छोड़े को पहचानने में उसने भूल नहीं की थी। सीधे मारकर वह बारात के पीछे पीछे

भागती दूर तक चली गई थी। स्वयं इसी दयालु डाक्टरनी ने पकड़कर उसे अपनी विराट छाती में भींच लिया था। यही किशानुली मेरी कहानी 'ग्रामीन' की नायिका है और उस घरण्य में मिली और उमरी घरण्य में बिछुड़ गई वह विदेशी डाक्टरनी मरी 'वृष्णकली' की डाक्टर पैट्रिक है।

'वृष्णकली' की कुछ किस्तों के 'घमयुग' में छपते ही पाठकों के रंग विरगने पत्रों के अवीर गुलाल ने मुझे रंग दिया था। उनमें सचमुच ही फागुनी बयार की सी मस्ती थी। वृष्णकली कौन है? क्या वह कुमारी है? क्या वह मेरी कल्पना की ही उपज है? यदि नहीं, तो क्या मैं उसका पता भेज सकती हूँ? कभी कभी पत्र पढ़कर हसी भी आती थी, कि तु एक दिन एक पत्र ऐसा आया, जिसे पढ़कर मैं हस नहीं पाई। पत्र आया था गोरखपुर बुष्ठाश्रम से। भ्रष्टार एस थे कि जी में आया चुनकर पिरो लूँ। जैसी सुपड लियावट, वैसी ही भाषा। स्वयं अपने अभिप्राय अस्तित्व का परिचय देने में लिपनेवाले की कलम जरा भी नहीं झिझकी थी।

शिवानी जी, इसके पूर्व आपकी 'शिबी' पढ़ी, 'ग्रन्था' पढ़ी और अब 'वृष्णकली' पढ़ रहे हैं। अब तो दोनों हाथा की कुल जमा सात ही अंगुलियां बची है और यदि पूरी भी होती तो शायद मनचाही प्रशंसा नहीं कर पाता। एक ही प्रश्न पूछना चाहता हूँ आपको इस रोग का ऐसा विषाद अनुभव कैसे है? क्या आप स्वयं इस रोग की रोगिणी हैं, या आपके परिवार में किसीको यह रोग है?"

तब, मैं उसके इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी थी, क्योंकि न पत्र में उसका नाम था न पता। केवल गोरखपुर बुष्ठाश्रम के पत्र पर मेरा उत्तर कहा भटकता? इसीसे आज ही उसका उत्तर दे सकी हूँ। न मुझे यह रोग है न मेरे परिवार के किसी सदस्य को किन्तु अचानक मिली उस विदेशी डाक्टरनी की मैत्री ही मुझे इस महारोग के विषय में बहुत कुछ बता गई थी। उसीने कहा था, 'हमारी यह भ्रात धारणा है कि यह एक भयावह रूप से छुनहा रोग है।'

और फिर, कुछ वर्षों पश्चात् मुझे मिली थी मेरी नायिका। सचचरो पर पत्थर लादनेवाले पठान जनक ने उसकी माँ को छोड़ दिया था। दुखिया पति परिश्रयका तीन बच्चों को लेकर अपनी बहन की धारण में चली आई थी। वही उस मरी को मारने वह महारोग-ब्याल उससे लिपट गया। तीनों देवदूत से बच्चे आए दिन कभी चीनी मागने, कभी आटा मागने हमारे आगन में खड़े हो जाते। उनका मोसा पास ही किसी पादरी साहब के सामरपेसे में रहता था। गौरी बुआ (सुमित्रानन्दन पत्र जी की बड़ी बहन) निरर्थक अपनी अविष्यवाणी दुहराती, 'दख सेना, एक न एक दिन यह लड़की राजरानी बनेगी—आहा, कसा अठ अंगुलिया कपाल है।'

हमें हसी आ जाती, “जहर राजरानी बनेगी, बाप पठान है और मा कोठिन। खाने को तो जुटता नहीं बेचारी को ”

किंतु सचमुच ही उनकी भविष्यवाणी खरी उतरी । वह राजरानी ही बनी । मा के रोग ने विकट रूप धार लिया, तो वहन ने बच्चों सहित उसे गाव भेज दिया । वही कुछ महीनों बाद उसकी मृत्यु हो गई । कुछ ही दिनों बाद जब उस अभागी की विरादरी ने उसके कुख्यात रोग के कारण, उसके बच्चों को भी दुत्कार दिया तो मिशन ने उहे क्षरण दी । राजरानी को गोद लिया एक विदेशी महिला ने, जिसका सुश्रुतिपूर्ण सरक्षण उस यवन दुहिता के सौंदर्य में सुहागा बनकर रिस गया ।

पठान जनक का ऊँचा कद, कुमाउनी जननी की अपूर्व देहकाति एवं विदेशी उच्च समाज के सहवास ने उस खान के सारे हीरे को अब कितने कैरट का बना दिया होगा, यह मैं अनुमान लगा सकती हूँ । यही कोहनूर मेरी कृष्णकली है ।

‘भैरवी’ की प्रेरणा भी मुझे बहुत कुछ अशो म कुमायू से ही मिली । वैसे वहाँ घमघ्यवस्था की दृष्टि से हिंदू धर्म ही प्रमुख है । बौद्धधर्म आठवीं शताब्दी तक रहा । इस धर्म के कुछ कुछ अनुयायी आज भी कुमायू के उत्तरी भाग—जोहार, दारमा—में मिलते हैं । गणनाथ, ‘पीनाथ’ आदि नामों से स्पष्ट है कि कुमायू नाथों की तपस्या भूमि भी रही है । वनफटे जोगो नाथ संप्रदाय की परंपरा का आज भी प्रतिनिधित्व करते हैं ।

शिवोपासना के कारण परी, भूत प्रेत, जादू टोने आदि का भी प्रचलन है । कुमायू गजेटियर में भी विचक्रपट इन कुमायू पर एक अत्यंत रोचक प्रकरण है । ‘गवाल’, ‘ऐडी’, ‘कलविष्ट’, ‘चोमू’ आदि स्थानीय देवताओं की कचहरी में कब किसने पुरश्चरण की अपील की थी और कैसा तत्काल पाप हुआ था, इसकी कितनी ही कहानियाँ बचपन में सुनी थीं । शायद वही स्मृति ‘भैरवी’ में भी उभर उठी है ।

मेरी आज तक प्रकाशित कहानियों में ‘करिए छिमा’ मेरी सबसे प्रिय कहानी है । आरंभ से अंत तक, उसकी एक एक पंक्ति को मैं कुमायू कथाचल में जड़े सलमे सितारे दुःसाहस से उखाड़ उखाड़कर सवारा था । मैं जानती थी कि उस कथाचल की कारखोबी एकदम असली है, किंतु इस फरेबी युग में क्या उनकी असलियत की पुष्ट दलील से मैं अपने पाठकों का विश्वास जीत पाऊंगी ?

कहानी की नायिका पतिता है, किंतु जैसे तोषस्थान में किया गया पाप पाप नहीं होता, ऐसे ही कुमायू की पतिता में भी एक अनोखा तेज रहना है, ऐसा मेरा विश्वास है । वह पतिता होकर भी पतिता नहीं लगती । अपन प्रेमी को बचाने में, अपनी अवैध सतान को जलसमाधि देने में वह तिलमात्र भी विचलित नहीं होती । उस पतिता को सतीरूप में प्रतिष्ठित करना मेरे लिए उस कहानी का सबसे बड़ा

सिर दब बन गया था ।

नायिका, नवजात शिशु की हत्या के अपराध में, कटघरे में बदिनी बनी खड़ी है । विदेशी हाकिम उससे पूछता है, “बोल लडकी, इसका पिता कौन है ?”

“सरकार,” वह मुहजोर हसर कहती है, “आप हाकिम हैं, गाव गाव का दौरा करते हैं, कितने ही नौलै भरनो का पानी पोते हैं, और जब कभी आपको जुकाम हो जाता है, तो क्या आप बता सकते हैं कि किस भरने के पानी से आपको जुकाम हुआ ?”

अपनी उस नायिका में यह बयान दिलवाने में मैंने कितने ही पृष्ठ लिख लिख कर फाड़े थे और कितनी ही बार बिगडेल धोड़ी सी मेरी लखनी बिदककर दो पैरों पर खड़ी हो गई थी । कुमायू की किसी पतिता की ऐसी ही दो गई कैफियत बहुत पहले कही सुनी थी । प्रेमी को बचाने के लिए एक अपद पतिता की ऐसी प्रत्युत्पन्नमति, ऐसी हाजिरजवाबी और देवदुलभ सौंदर्य के साथ-साथ ऐसा निष्कपट आत्मनिवेदन क्या कही और मिल सकता था ?

किंतु ऐसी कैफियत में उससे कैसे दिलवा दू ? मैं सोचती हूँ, यह उलझन, केवल मेरी उलझन नहीं थी । आज से तीस वर्ष पूर्व बर्जिनिया वुल्फ ने अपनी इसी उलझन के विषय में लिखा है, “मैं कितना कुछ लिखना चाहती हूँ, किंतु क्या नारी होकर यह सब लिखना मुझे शोभा देगा ? लोग क्या कहेंगे ?” यही आशंका कि लोग क्या कहेंगे, एक लेखिका की कल्पना का गला घाटकर रख देती है । कलाकार अपने कल्पनालोक में किसी प्रकार का व्याघात नहीं चाहता । किसी आशंका की सामान्य सी पदचाप ही उसकी कल्पना की मृत्यु का कारण बन सकती है ।

अपनी आशंका को दूर पटककर मैं स्वयं अपनी नायिका के साथ कटघरे में खड़ी हो गई, ‘श्रीमान, यह पतिता होकर भी पतिता नहीं है’ मैंने उसकी मूक पैरवी की । और मुझे लगा, वह छूट जाएगी । कहानी के छपने के कुछ ही दिनों बाद मुझे जेठे जी का पत्र मिला, “आपकी कहानी ‘करिए छिमा’ पढ़ी, मन भर आया । इसीसे खरुरो हो गया कि आपको पत्र लिखू ।” उसी क्षण विजयी नायिका का सुख स्वयं मेरा सुख बन गया ।

कुमायूवासी, घमपरायण होते हैं और इस घमपरायणताने उनके सरल जीवन को एक अनोखी मृदुलता, लावण्य एवं स्निग्धता प्रदान की है । ओकले के अनुसार “हिमालय के साहित्य की अपनी मौलिक विशेषता है ।” उन्होंने कुमाउनी साहित्य को उसके जन्मदाता हिमालय की ही भांति पवित्र और रहस्यपूर्ण माना है । कुमाँचल की रहस्यमयी पावन मसिंधारा में लेखनी डूबने का लोभ सवरण करना किसी भी कुमाउनी के लिए संभव नहीं है । कुमायू के प्रसिद्ध गुमानी कवि मेरे परनाना थे । आज उहीकी कुछ पक्तियाँ आँखों के सम्मुख आ जाती हैं :

क्रम

करिए छिमा	१५
पुष्पहार	४४
‘के’	६१
चीलगाढी	८१
सती	९४
ज्येष्ठा	८८
शपथ	१०१
अपराधी कौन	११२
तोप	१२१
मधुयामिनी	१३२

करिए छिमा

उस बर्फीले तुफान में हीरावती की विचित्र खोह में ब दी हुआ श्रीघर भाव-नाशो के उफान में समय के बघन को तोड़कर जैसे आदिम मानव हो उठा और अस्वस्थ मन एवं शरीर, दोनों को वह पूर्ण विश्राम देना चाहता था। एक तो वह सबदा अपने प्रत्येक भाषण को बड़े परिश्रम से प्रस्तुत करता था, फिर इस भाषण में तो उसे अपने आगामी चुनाव के प्रतिद्वंद्वी को घोषी पछाड़ की पटखनी देनी थी। मेज पर धरी दुग्ध घवल टोपी उसने सिर पर धर ली। जब तक वह अपने इस जादुई यंत्र को सिर पर धर उसकी तीखी उस्तरे सी धार पर हाथ न फेरता, बीणावरदडमडितकरा देवी सरस्वती उससे लूठी ही रहती। टोपी सिर पर धर वह दपण के सम्मुख खड़ा होकर मुसकराया। प्रभावशाली प्रतिबिम्ब ने और भी अधिक आकण्ठ स्मित का प्रत्युत्तर दिया।

प्रशस्त ललाट, तीखी नासिका, विलासी ग्यूपिड अघर और चिकना धुपड़ा चेहरा। श्रीघर को इस स्मित से स तोप नहीं हुआ। इस बार, वह और भी आकण्ठ ढग से मुसकराया। होठ भींचकर प्रस्तुत किए गए उस समयित स्मित का आकण्ठ वास्तव में अनुपम था।

कौन कहेगा कि वह पचपन वष का है? काले बासा को कौन सी अमृत बूटी पिलाता है वह? गत वष यही प्रश्न, विदेश यात्रा के बीच, उससे कई विदेशी गतयौवनाओं ने घुमा फिराकर पूछा था।

वह नम्र मिष्टभाषी भारतीय अपने यौवन की मरीचिका की व्याख्या संक्षिप्त शब्दों में देता, 'मेरे चिर यौवन का रहस्य है—स्वस्थ मन एवं स्वस्थ शरीर।' फिर वह मुसकराकर अपने व्यक्तित्व का द्वार मखमली डिव्वा खोल जगमगाती दाढ़िमी दंतपंक्ति की रत्नराशि से भीड़ को मुग्ध कर देता।

"क्षमा कीजिएगा," यौवन को सदा गाठ में बांध वन्न तक ले जानेवाली विदेशी रमणिया उसे फिर घेर लेती, "आपने यह डंकर कहा बनवाया? हमें भी बनवाना है।"

"आपको बड़ी दूर जाना पड़ेगा," कहकर वह हसकर आकाश की ओर उगली उठा देता, 'सौभाग्य से हम अधिकांश भारतीयों का एकमात्र डेटिस्ट अभी भी विधाता ही है।"

बड़ी देर तक विदेशी रमणिया उसे अविश्वास से घूरती रहतीं।

आज एक बार फिर अपनी उसी स्वच्छ, बहुचर्चित दंतपद्धति को गर्व से निहार, वह हाथ बाधे, दण के सम्मुख अपने दूसरे दिन दिए जानेवाले भाषण की आवृत्ति करने लगा। यह उसका नित्य का नियम था। विधान सभा ही या साव जनिक जलसा, बिना दण के सम्मुख किए गए एक पक्के रिहसल के वह कभी भी अखाड़े में नहीं कूदता था। इसीसे आत्मविश्वास का कभी न छूटने वाला पक्का रंग उसके गोल चेहरे की वार्निश की सी चमक से चमकाए रहता।

वह अपने उन सहकर्मियों में से नहीं था, जो घर से भाषण या होमवर्क करके नहीं लाते, और ऐन भाषण के बीच विषय से इधर-उधर भटकते बगलें भाकने लगते हैं। उनकी ओछी हरकतों से कभी कभी उसका माया लज्जा से झुककर रह जाता था। सेक्रेटरी ने उल्टा सीधा, लच्छेदार भाषा में भाषण लिख दिया, और उ होन करकराती खेरवानों और कलफ की टोपी पहन, मसिया सा पढ़ दिया। लच्छेदार भाषा ही तो सब कुछ नहीं होती। विषयवस्तु का भी तो कुछ स्थायी महत्त्व होता है, यह नहीं जानती थी उसकी मूल विरादरी। पर कौन समझाए उह ? उनके कानों में तालिया की गडगडाहट और गले में फूलों की माला पड़ गई, तो गगा नहा सी। पर श्रीधर जनता को पहचानने लगा था। और जो कुछ भी हो, आज की बुद्धिजीवी जनता को छला नहीं जा सकता। इससे वह अपने दिमाग के कोठे को ठसाठस भरकर रखता था। उसके शब्दों के चयन, वाणी के भोज और उतार चढ़ाव में ध्रुपद धमार के गायक की सीधी झाड़ी, दुगुन और चौगुन लयकारी रहती। जैसे लच्छेदार वाता के जाल में दशको को उलझा, चतुर बाजीगर हाथ के कबूतर को सहसा हवा में फड़फड़ा प्रवश्य कर देता है और उसी पल भीड़ को उलझन में डालन को चादर से ढका अपने पैर का अगूठा ऐसे हिला देता है, जैसे ठीक कबूतर की मूड़ी हिल रही हो।

“वह है, वह है। वहा छिपाया है।” दशक कहत है।

“अरे, यह ? यह तो मेरे पैर का अगूठा है भाई।”

चतुर बाजीगर चादर हटा नगा अगूठा हिला, अपने को उससे अधिक बुद्धिमान समझनेवाले दशक को एक ही लटके से खिसियाकर घर देता है। ऐसे छोटे मोटे अनेक रसीले लटकों से वह भोजस्वी वक्ता अपनी भीठी वाणी के मोह पाश में कड़े से कड़े आलोचक को भी बाधकर रख देता था। फिर भी उसके व्यवित्तत्व का आकषण विघाता की देन भले ही हो, उसकी प्रतिभा देवदत्त नहीं थी। उसके पीछे अथक परिश्रम का एक लम्बा इतिहास था।

श्रीधर ने एन साधारण गृह में जन्म लिया था। पिता थे एक शिव मंदिर के पुजारी और माता को उसके जन्म के मूल नक्षत्र ने उसी दिन इस लिया था। पहाड़ के लाल मोटे चावल को नमक के साथ निगल, वह मीलों के तीव्र उतार चढ़ाव पारकर पढ़ने जाता था। आठ ही बय का था कि पिता का साया भी उठ

गया। लोक नाज के भय से, ताऊ ने उसे अपने पास बुला लिया। ताई के दुर्व्यवहार और पहाड़ी पगडंडियों के उतार चढ़ाव ने उसे जीवन के उतार चढ़ाव के दुर्दृष्ट पाठ की समय से पूर्व ही रटाकर पट्ट कर दिया था। इसीसे उच्च पदा रुठ होत ही उसने अपनी समग्र शक्ति अपनी पिछड़ी जन्मभूमि के शिक्षा सुधार की ओर लगा दी थी। यह उसीकी घट्टट निष्ठा का फल था कि आज उन दुग्ध शैशवियों पर, जहां पहले चिड़ियां भी नहीं चहकती थी इतिहास भूगोल और गणित की व्याख्या गुजर लगी थी। वही वही पर तो उसने घातते फिरते स्कूल भी खुलवा दिए थे। हिमपात होते ही सचचरो पर सदा हेडमास्टर, अध्यापक और विद्यार्थियों सहित पूरे स्कूल का स्कूल घाटी में उतर आता। इसीसे एक ही चुनाव की नहीं घगले कई चुनावों की विजय पताका एक साथ सिलवा वह मुछा में लाव देता, निश्चित बैठ सकता था। गम चूड़ीदार, पट्ट की शेरबानी और नुकीली सफेद टोपीधारी उस शोम्य सत के भाषण के बीच जनता जनादन को चूर करने का भी साहस न होता। भाषण के एक एक चुने वाक्य मोतियों की लड़ियों की तरह स्वयं गूथते चले आते। यहां तक कि उसकी किस उक्ति पर तालियों की गगनभेदी गडगडाहट गूजेगी, यह भी उसे पहले से ज्ञात हो जाता, और वह स्वयं विराम अघविराम लगाता रहता। श्रोताओं को कब मात भाषा की फुलझड़ी से गुग्गुदाना होगा, कब अपनी अजित अन्तर्गर्भीय रयाति का प्रसंग कस छेड़ना होगा कि दर्पोकित न लगे, यह सब वह राजनीति का कुटिल खिलाड़ी भली भांति समझता था। सहसा वह दण के सम्मुख, किसीको कुछ न समझने वाली नेपोलियन की गर्बिली मुद्रा में खड़ा हो गया। उसका गव मिथ्या नहीं था। जिन ग्रामों में कभी मिट्टी के तेल की बाती भी नहीं दणपपाई थी वही आज उसके प्रयास से पहाड़ी की वेगवती अलकनंदा की बाग विद्युत् प्रवाहिनी उज्ज्वलता बिखेर दी गई थी। पर इस टोपी के ताज ने क्या उसे बिना कुछ किए ही बादशाह बना दिया था? क्या पुलिस की निमम ताठियों ने उसकी पसलियों का चूरा बनाकर नहीं घर दिया था? दुर्दान गोरे सिपाहियों के बदनो ने क्या उसकी दोनों कमान सी घनी भकुटिया के बीच लम्बा धाव स्वतंत्रता के विजय तिलक के रूप में सदा सदा के लिए सजाकर नहीं रख दिया था? और फिर अल्मोड़ा जेल की चारदीवारी में स्वेच्छा से ही बंदी बना दिया गया उसका जीवन, नैनी जेल की सड़ी गरमी और लू की अविस्मरणीय लपटों से झुलसा दिया गया जवानी का वाक्पन क्या सहज में भुलाया जा सकता था? पर क्या केवल देशप्रेम ने ही उसे सबस्व त्यागी बनने का आमंत्रण दिया था? अधानक श्रीधर के उल्लास की ज्योति स्वयं धीमी पड़ गई। क्यो भाग गया था वह गाव छोड़कर? जान बूझकर ही अग्नेज कमिश्नर के बगले के सम्मुख अनावश्यक घटना देकर क्या हथकड़ियां की रक्षाघन की भांति ग्रहण करने को उसने

ललककर कलाईया बढा दी थी ?

श्रीधर की सफेद टोपी पसीने से तर हो गई ।

कल अपने ग्राम के अकाक्ष पर सर से निकलते अपने वायुयान की खिडकी से उसे अपने विस्मृत ताजमहल का मुम्बद दोख गया, और रात भर वह सो नहीं पाया ।

एक गहरा निश्वास उसने होठा को कपाता निकल गया । सिर की टोपी उतार, पखा सा झलता, वह आरामकुर्सी पर लद गया ।

इन पच्चीस वर्षों में भी क्या मुह का कड़वा स्वाद नहीं गया ? कुर्सी पर झपलेटा श्रीधर आखें मूदे, स्वयं ही स्मृति के धाव को कुरेदने लगा ।

तब यौवन का वाकपन उसकी मूछो पर नवागट अर्तिाय बनकर उतरा ही उतरा था । ताई के दुःखवहार से ऊबकर, वह अपने ग्राम की सीमातवासिनी एक मिशनरी मेम के साथ रहने लगा था । लोग कहते थे कि बुडिया ने उसे अपने साथ गिरजाघर ले जाकर पक्का किरिस्तान बना दिया है । किरिस्तान तो नहीं, पर विदेशी सतानहोना मेम के स्नेह और अनुशासन ने उसे आदमी अवश्य बना दिया था । मृत्यु से पूय उस निस्वार्थ बुड्या ने उसे विश्वविद्यालय की उच्चतम परीक्षा उत्तीर्ण करा दी थी । यह ठीक था कि बेचारी की क्षीण पूजा श्रीधर की शिक्षा में ही चुककर रह गई थी, किन्तु अपनी अनमोल वसीयत के रूप में वह अपने सुदर्शन दत्तक पुत्र के नाम अपनी नम्रता मिष्टभाषण एवं निष्कपट व्यवहार का कभी न शेष होने वाला कुबेर का सा कोप छोड़ गई थी । इसी वसीयत ने श्रीधर को ग्रामवासियों के हृदय के सर्वोच्च आसन पर बिठा दिया । केवल उसीके नहीं, दूर दूर तक के ग्रामों में अनोखी सूझ बूझ के उस यावप्रिय युवक की धाव जम गई । जहाँ पहले छोटी मोटी जमीन जामदाद और खर खैर की समस्याएँ लेकर ग्रामवासी अलमोडा की कचहरी भदालत की धूल फाँटते थे वहाँ चुटकियों में श्रीधर अपने विलक्षण कानूनी नस्तर से उनके विकट से विकट धाव चीरकर रख देता । सर्वसम्मति से वह ग्राम का नेता चुन लिया गया था । किन्तु चिन्ता एक ही बात की थी । उनका यह लोकप्रिय नेता एक नम्बर का भगोड़ा था । कई बार ग्रामवासियों ने उससे अनुरोध किया था कि वह स्थायी रूप से ग्राम में यायाधीन का पद ग्रहण कर ले, किन्तु श्रीधर तो रमता जोगी था । आज कालीपार अघोरी बाबा के आश्रम में तो कल सावरमती । जब कभी वह ग्राम में आता विविध प्रकार के मुकदमों की पीटलिया उसके प्राण में गुलने लगती । किसीने किसीके सेत की तीन-चार सोडिया रात ही रात म काटकर अपने सेत में मिला ली कोई एक लम्बे घंटे तक फोज म रहा, और उसका सगा भाई उसकी सुंदर पत्नी को लेकर भाग गया ।

प्रत्येक मुकदमे में वह दूध का दूध पानी का पानी कर देता । लोग कहते थे

कि दिवालय की कोठरी में एक लम्बे अर्से तक पार्थिव पूजन कर, उसने शिवजी से अनोखा वरदान प्राप्त किया है। उसका अद्वितीय फैसला पक्ष और विपक्ष दोनों दलों को सदा गाय रहता।

एक बार ऐसे ही एक विचित्र मुकदमे में उसने अपने ग्राम की उस सैंडी टाम्सन को पहली बार देखा, जिसके सौंदर्य और दुश्चरित्रता की दिगतव्यापी दतकथाओं को वह कई दिनों से सुनता आ रहा था। ठीक जैसे माम की नायिका घुंटा सैंडी ही सहगा ओढनी पहनकर बैठ गई हो। उसके विरुद्ध मुकदमा दायर करने आई थी स्वयं उसकी जुड़वा बहन पिरभावती और पीछे पीछे थी पूरे ग्राम की भीड़।

“याय करो लाल साहब।” विदेशी बुद्धा के दत्तक पुत्र श्रीधर को सब इसी नाम से पुकारते थे। “इसके समुत्तल वाली से बैर भोल लेकर मैंने इस नागिन को अपनी आस्तीन में पाला और ठीक महीने भर में ही इसने मुझे डस लिया।” और झोटा पकड़ पिरू न नागिन को खींचकर श्रीधर के पैरों के पास डाल, एक लात जमा दी।

सकोची श्रीधर हड़गडाकर खड़ा हो गया। पर क्षण भर को उसके घूटनों से लगी वह लम्बी, छरहरी, चौड़े मर्दाने कंधे वाली क्षत्राणी, कपड़ों की धूल भाड़ती ऐसे खड़ी हो गई, जैसे पैर रपटन से गिर पड़ी हो। न उसके चेहरे पर लज्जा या खिसियाहट की एक रेखा खिंची, न उमने उस सावजनिक सभा में किए गए अपमान के विरुद्ध बड़ी बहन से कुछ कहा। सुंदर अम्लान बेहरा क्षणिक लाली से रजित हुआ। पर दूसरे ही क्षण वह घंटा किशोरी वही पर धरे टीले पर तिनका चबाती एस बैठ गई, जैसे राजरानी हो। भवान् ॥ यासी के से उस मुकदमे में युवा यायाधीश को उलभन में डाल दिया। घनसिंह की पत्नी पिरू अपनी सुंदरी जुड़वा बहन हिरू को एक माह पूर्व अपने साथ ले आई थी। उसका भगिनीपति गंग कुली था। कुछ ही माह पूर्व डायनामाइट ने चट्टान के साथ हिरू व सौभाग्य की भी धाजगा उड़ा दी थी। तब स नित्य पिरभावती अपनी अठारह वर्षीय बहन के दुर्भाग्य की कहानियां सुन सुनकर व्याकुल हो जाती। आज सास न अगारे से उसे दाग दिया आज देवर ने माथा फाड़ दिया आदि-आदि। फिर वह एक दिन उसे स्वयं ले आई। पर एक महीना भी नहीं बीता था कि हीरावती ने बहन की अनुपस्थिति में उसीके सौभाग्य कोप पर डाका डाल दिया। रंगे हाथा पकड़ा था पिरभावती ने।

उधर पत्नी की दृष्टि में अपराधी घनसिंह अपने को दूध का घला बतार रहा था। “एक ही घड़ी में भगवान् ने एक ही नक्शे की दो मूरतें रचकर रख दी तो आप ही याय करें, सरकार, दोप मेरा या विधाता का? मैंने जरूर इस छोकरी का हाथ पकड़कर इसे छाती से लगाया, पर यह भी तो चुपचाप छाती से लंबी

हसती रही। एक सी सूरत, एक सी धोती और एक सी हसी। अब धनसिंह साला क्या कदम का चरमा लगाए था।”

धनसिंह का यह कदम के चरमे वाला सस्ता मज्जाक जनता ने बेहद पसंद किया और एक तुमूल हास्य लहरी को रोकने के लिए स्वयं श्रीधर को खड़ा होना पड़ा था। “भाइयो, आप सब जानते हैं कि पचायत में मुझे हसी ठठ्ठ पसंद नहीं है। धनसिंह ठाकुर को जो कुछ कहना हो साफ साफ कहे।”

“अब इससे ज्यादा साफ साफ और क्या कहूँ, न दाता?” धनसिंह ठाकुर अपनी रसिकता से बाज नहीं आया। “धोती खोलकर नगा हो जाऊँ। पचो के सामने अब और क्या कहूँ? पर गंगा की सौ यह छोकरी टुकुर टुकुर मेरी और देखती हसती रही। एक बार कहती कि ‘मैं तेरी साली हूँ,’ तो क्या इस छूता?”

टीले पर बैठी अब भी वह छोकरी टुकुर टुकुर धनसिंह को देखती वैसे ही हस रही थी। श्रीधर ने दोनों बहनों को देखा। सबकुछ एक ही ठप्पे पर दो बहनों की सृष्टि की गई थी। अंतर दोनों में उतना ही जितना एक जोड़ा ऐसी घोटियों में होता है, जिनमें से एक तो बिना घुंसी कोरी ही घरी हो, और दूसरी घुंसी की पछाड़ ने साफ कर दी हो।

“कूठ बोलता है वेशरम।” पिरभावती ने घणा से पति की ओर देखकर कहा, और सीना तानकर पचो के बीच खड़ी हो गई।

“मेरी हालत देखो लाल साहब।” उसका स्वर उत्तेजना से कापने लगा। “क्या मेरी घाघरी गले से नहीं बंधी है? और क्या इस फटफटी छोकरी का पेट पीठ से नहीं लग रहा है?”

उमकी किसी अनुर श्रीमिनल वकील की सी इस दलील ने मुकदमे को जटिल बना दिया। अपनी गर्भावस्था के अंतिम उभार का समुचित प्रदर्शन करने के बाद बैठकर वह प्यासी कुतिया सी हाफने लगी।

टीक ही बह रही थी वह। दोनों के चेहरे भल ही एक से हो, शरीर की गठन में किसी प्रकार की छलना के लिए गुंजाइश नहीं थी।

टीले पर बैठी इनहरे शरीर की सुंदरी स्वामिनी तिनका बघाती अब भी उतनी ही रहस्यमयी रही। पचा की जरी श्रीधर से विचार विमर्श करने पास की गघाती गोपाला के पिछवाटे चली गई। अंतिम फैसला देने में पूर्व इस विविध प्रदालत का यही नियम था।

पता नहीं क्या फैसला देगा लाल साहब। उसका फगला सदा बजोड़ होता है।

श्रीधर का गभीर बटस्वर पहाड़ी मन्दिर के दमामे-सी घोट करता गूज उठा था—“भाइयो, पचा के मत से धनसिंह ठाकुर निर्दोष है।”

“घब हो लाल साहब ।” धनसिंह के पाचो पाडवो से भाई टोपिया उछालने लगे थे ।

“हो सकता है” श्रीधर कहता जा रहा था, “कि अचरे मे ठाकुर अपनी साली का चेहरा ही देख पाए हो, शरीर नहीं । और दोनो बहना के चेहरो मे तिल रत्ती का भी अंतर नहीं है । यह तो आप स्वीकार करेंगे ही ।” सैकड़ा ग्राखा का फोकस एकसाथ ही प्रमुख नायिका के चेहरे की ओर घूम गया । ‘दोप निश्चय ही हीरावती देवी का है । क्या आप घबराहट से चीख नहीं पाई ?’

श्रीधर ने प्रपन इस सहृदय प्रश्न से अडियल घोड़ी की लगाम मे ढील दी कि शायद इस प्रश्न का सहारा पाकर कह द कि हा, मैं घबरा गई थी । पर वह तो निरुत्तर सिर नीचा किए, अपनी उसी रहस्यात्मक मुद्रा मे मुसकराती रही । उस उद्द किशोरी की इस चोरी और सीनाजोरी को देख, ‘यायप्रिय श्रीधर का खून खौल गया । इससे पूर्व भी उसके पास, इस दूसरे ग्राम से आ टपकी महा मारी सी मारक दुश्चरित्रा हीरावती के उ मूलन के अनुरोध की प्रार्थना करते कई गुननाम पत्र आ चुके थे ।

‘हीरावती देवी, आपका दस मिनट का समय और दिया जाता है । इस बीच भी आप अपनी सफाई न दे सकी, तो पचो को अपना फैसला देना ही होगा ।’ श्रीधर न दब स्वर मे कहा था ।

हीरावती न बड़ी उपेक्षापूर्ण दृष्टि से श्रीधर को दखा, फिर द्रोणागिरी के पीछे लाल आग क गाल स डूबत सूर्य की ओर अपनी दृष्टि निबद्ध कर दी, जैसे प्रस्तावलगाभी सूर्य के साथ ही पचो के निरर्थक प्रश्न को भी डूबो रही हो । दस मिनट तो क्या, दस वष की अवधि दिए जाने पर भी शायद हीरावती उसी दाशनिक मुद्रा मे मुसकराती रहती ।

हारकर पचो ने फैसला दे ही दिया, क्योंकि दानो जुडवा बहनो का रग रुप एक ही था शरीर के आकार का अंतर भी स्थायी नहीं था, गभ भार से मुक्त होने पर फिरभावती फिर अपनी जुडवा बहन का अविकल प्रतिरूप बन जाएगी, और ठाकुर धनसिंह की अपनी घातक मूल दोहरान की सम्भावना और अधिक बढ जाएगी । इसीसे श्रीमती हीरावती की आदेश निया कि ब बारह घंटे के भीतर ग्राम की सरहद खाली कर दें ।

फसला सुनते ही हीरावती मुस्कराकर श्रीधर की ओर मुह फरकर खडी हो गई । पहली बार उसने मुह खाला, ठीक है पचा । मैं आज से कोडो साहब के ओडपार मे रहूंगी । वह तो आपके गाव की सरहद के बाहर है न ?”

उसने एक बार फिर अपनी रससिक्त मुस्कान से ग्राम के मनचला को तिल मिलाकर धर दिया । अचानक भीड़ स्तब्ध हो गई । कहती क्या है छोकरी ? कोडो साहब की गुफा मे रहूंगी ? चारो तरफ से भीठे सब, नासपाती अचरोट

श्रीर मिहिल के वक्षो से आच्छादित उस लम्बी रेल टनेल सी बनी अघकारपूण प्राकृतिक गुहा में बहुत पहले एक विदेशी चित्रकार आकर रहने लगा था। अब ग्रामवासियों के कथनानुसार वह गुहा उसी साहब की प्रेतयानि का स्थायी आवास बन गई थी। अपने बीभत्स महारोग को, अपनी ग्रीक देवता सी सुंदर देह में छिपाए वह विदेशी जब गुहा में रहने आया, तो उसके रोग का कोई भी बाह्य चिह्न देखने में नहीं आता था। ग्रामवासी उसे 'पादढी साहब' कहकर पुकारते थे। धीरे धीरे किसी खदक में छिपे कुटिल शत्रु की भांति, उसके रोग ने उसपर अचानक आक्रमण कर दिया, और वह निहत्था नहीं जूझ सका। पहले हाथ की अंगुलिया गड़, फिर पलकें। और एक ही वृष में वह बुरी तरह लगड़ाने लगा। कुछ दिनों तक वह अपने ठूठ से हाथों से गुहा भित्ति की अपनी अगूठी कला से विभूषित करता रहा। पर एक दिन विवश तूलिका नीचे गिर पड़ी। साहब फिर भी सहज में पराजय स्वीकार करने को तत्पर नहीं हुआ। जो कलात्मक हाथ तूलिका को धार्य करते थे उन्होंने कुदाली थाम ली। जलना, रामगढ़ और कुल्लू से सुनहरे सेब नासपातियों की पीघ मगाकर बोड़ी साहब ने अपने विवृत हाथों से फल और पुष्पों के भावी नन्दनवन की स्रष्टि कर दी। यह ठीक था कि वह स्वयं फल खाने तक जीवित नहीं रहेगा क्या मीठे कुएँ का पानी पीकर लोग बुझा खोदने वाले को स्मरण नहीं करेंगे ?

इधर रोग अब छाती पर चढ़ बैठा था। एक दिन शायद उसकी मानसिक व्यथा शारीरिक व्यथा से भी अधिक असह्य हो उठी। एक खाले के पुत्र को उसने कभी पढाया था। वही पाव भर दूध नित्य साहब के घ्राणे में घरे मग में उडेलकर जाता था। एक दिन वह आया, तो मग नहीं था। खिड़की से झाँका और चीख कर भाग गया। गुहा भित्ति की किसी अदृश्य खूटी से टगी, साहब की निर्जीव वह झूल रही थी।

फिर किसीको भी उस और जाने का साहस नहीं हुआ। अलमोड़ा के ही दो तीन मित्रनरी आकर उसीके बाग में उसे दफनाकर चले गए। तब से प्रति वृष सेब और नासपाती के वैभव से गदराएँ, बोड़ी साहब के बाग का व्यय जीवन अनाघात पुष्प की भांति भर भरकर मुरझा जाता। लोगों का कहना था कि गुहा की छत से झूलता बोड़ी साहब सघ्ना होते ही बूद जाता है और बड़ा चौकसी से अपने बाग की रखवाली करता है। उसी मोड्यार में सुंदरी हीरावती के रहने का अमानवीय सक्त्प सुनकर उसकी बहन ने कहा, "बहुत देखे हैं ऐसे मोड्यार में रहने वाले।"

पर जब तीसरे ही दिन उस दुस्साहसिनी नारी को किसीने साहब के बाग के सुनहरे सेब बेचने बाजार जाते देखा तो पूरा ग्राम दग रह गया। कुछ ही घंटा में वह टोकरों भर सेब बच अपनी नई गृहस्थी बमाने के सामान से भरी पोटलियाँ

लेकर मुसकाती लौटी तो स्त्रियो मे बानाफूसी होने लगी, "देखा, कितन बडे बम गोले से सेव, भाडू हैं। कोढी साहब की हड्डियो की खाद डली है, इसीसे।"

फिर तो हीरावती हर तीसरे दिन भरी भरी टोकरिया सिर पर घर मटकती बाजार को जाती। कभी नासपाती, कभी अखरोट और कभी किसी महादानव की उगलियो से दैत्याकार भिण्डिया। "लगता है कि कोढी साहब के प्रेत को ही फास लिया है छिनाल न, नहीं तो ये वे मौसमी भिण्डिया भाई कहा से?" स्त्रिया कहती।

पर उसकी भिण्डिया, चाहे वे इहसाब की रही हो या परलोक की, दिक्कर चुटकियो म टोकरी श्रृंगार प्रसाधन की सामग्री से भर जाती थी। कभी टोकरी मे धरा चौकोर दपण उसकी समवयस्काओं की भाएँ चौंधिया जाता। कभी गौर मणालदंड से सुकुमार हाथो म चमचमाती लाल हरी रेशमी चूडिया देखने वालो का कलेजा झुंझकर रख देती। हीरावती भी जान झुंझकर ही अपनी उत्तरोत्तर बढ़ती समृद्धि का इधन ग्रामवधुमा की ईर्ष्याग्नि मे झोकती रहती। कोढी साहब के बमगोले से सेवा की सासिमा न उसके समोल कपोलो को अपनी अनुपम तूलिका से रग दिया। नित्य के पलाहार ने वनदेवी के सलोने चेहरे की चिकनाई पर नवनीत का प्रलेप कर उसे नवजात शिशु के चेहरे सा सुचिक्कन बना दिया। वह जिस पथ से फलो का निर्यात करने जाती वहा पर जान झुंझकर ही ग्राम के मनचलो की टोलिया चक्कर लगाने लगी। एक तो वह जब से उस भुतही गुहा मे रहने लगी थी, उसका मूल्य तरण बग मे बहुत बढ़ गया था। वह गिरिशिखर, शेर और भालुओं का कुरपात अड्डा था। उस पर तीन मील की तीखी चढाई नित्य पारकर चढना उतरना हसी खेल नहीं था। फिर दिन डूबे लौटने पर कोढी साहब के प्रेत का सा निध्य। 'मसान साध रही है चुडैल।' स्वयं उसकी बहन ही इधर उधर कहनी फिरती। पर गुहावासिनी, विचित्र कपालकृण्डला को किसीकी चिंता नहीं थी। श्रीघर के शिवालय की खिडकी से तुंग पवत की गुकनासिका नी मुडी चोटी पर बनी हीरावती की लम्बी गुहा किसी मत गैडे की मटमेली देह सी पडी स्पष्ट दीखतो थी। कभी कभी सद्योत-सा दीपक टिमटिमाता दीख जाता, और कभी गुहा की चिमनी पर मडराती धूम लेखा। 'क्या सचमुच ही मसान साध रही होगी हीरावती?' श्रीघर मन ही मन सोचता।

पगडडियो से उतरती, उस अनुपम लावण्यमयी ग्राम्या को लोलप दृष्टि से निहारते, वह ग्राम व कितन ही युवा, प्रौढ यहां तक कि बूढ़ा के पावल मुखो को भी लार टपकात देख चुका था। यह श्रेष्ठ था कि जोस के दोक के धामने मे लचक गई बटि की मोहक भगिमा प्रदर्शन मे स्वयं उस मायाविनी की कोई कुचेष्टा नहीं रहती थी। वह मोहक लज्ज तो प्रत्येक युमाउनी पसियारिन के

विधाता का दयदत्त करदान है। जिस नृत्य प्रवीणा बी-सी स्वर-सय के साथ संगत देती चाल की शिक्षा आधुनिक युग की गंगा चारिणी विमान परिचारि काफ़ी की माथे पर पुस्तक घर महीना बड़े अनुशासन के धातुक की मार ॥ दी जाती है, उसे कुमायू की यह पवत क्या सहज स्वाभाविकता से पास का असह बोझा सिर पर धरते ही सींग लेती है।

ऐसी ही संगीत गुगर चाल के घुघरू बजाती हीरावती पास का गठुर सिर पर घरे उतरती तो आंगपास में सीटिया बजो लगती। बमर से बसकर बाधा पिछोडा बसी घासरट के गुल गुल जात बटनो पर गीली पीली मालाफ़ी का उठता गिरता जाल और भुजगप्रयात के स छ द म बंधी मोठी पदचाप। 'अपन सात्त्विकी ग्राम से हीरावती की मनहस छाया हटानी ही चाहिए मुझे।' नित्य श्रीधर अपना एक ही सबरूप दोहराना। पर अब तो हीरावती को उसका 'याय' दण्ड स्पष्ट नहीं कर सकता था। वह तो सधमुच ही ग्राम की सरहद के बाहर थी। इधर घण्टा हीरावती ने उमका सिरदद और बढ़ा दिया था। ग्राम के प्रवेश द्वार में उसका शिवालय था और हीरावती नित्य वहां से उतरते हुए अकारण ही वासती खसारी शिवालय का घटा खार-खोर से बजाने लगती।

शम्भू हरहर।" बहती हुई, वह अभी-अभी उसकी साकल भी सडलडा जाती "उठो ही, जज साहब। तुम्हारी बचहरी का टाइम हो गया।"

उसकी ओछी हसी का स्वर श्रीधर को जहर-सा लगता। पर झुमलाकर वह खन या घूट पी जाता। एक तो औरत जात ऊपर से ऐसी बेगरत। कौन मुह लगे। वह रजाई सिर तक सींचकर सोता रहता। एक दिन हीरावती समय से कुछ पूव ही आ घमकी। मंदिर का घण्टाघायद उसने जान झुमकर ही नहीं बजाया। रात बीतने ही को थी कि पुसर पुसर सुनकर श्रीधर जग गया। कार्तिक का महीना था। आठ दिन शिव मंदिर में पाथिव पूजन कर ग्राम की स्त्रियां शिवलिंग की वृष दही से नहला जाती। हो न हो कोई कुत्ता ही शिवलिंग को चाटने घुस आया होगा। श्रीधर ने लाठी उठाई और दबे पाव जाकर सिडकी से भागा। कल भी ठीक आधी रात को एक बाली कुतिया दूधिया शिवलिंग को अपवित्र करने घुस आई थी।

'कल तो हाथ नहीं आई, आज बमर सोढकर रख दूंगा' सोचता श्रीधर झुकने को बड़ा। पर वहां तो कोई दूसरी ही छाया अपनी अभावतः उपस्थिति से शिवालय को अपवित्र कर रही थी। शिवलिंग के सम्मुख घुटने टेके आगे मूढ़े भावविभोर होकर हीरावती मांठे करुण स्वर में गा रही थी—

नरेणा नरेणा

मेरी कदया नी कदया

वरिया नी वरिया

करिये छिमा
छिमा मेरे परभू ।

नारायण, हे नारायण,
मेरा किया, ना किया,
बहा, अनबहा
सब करना छिमा,
छिमा मेरे प्रभू ।

दोनों आँखों से आँसू की अविरल धारा बहाती, वह शिवलिंग का अभिषेक-सा कर रही थी । नित्य इन्हीं आँखों से हसने, गिलखिलान और बिड़ाने वाली आनन्दी हीरावती आज किस दुःख से रा रही है ? उस रहस्यमयी नारी के हृदय का भेद लेने को श्रीधर व्याकुल हो उठा । वह धीमे पैरों में बढ़कर छिडकी के पास सट गया । ओह ग्राम छोड़कर जा रही है हीरावती । पास की टोकरी में उसके कपड़े, शृंगार पिटारी, बतन भाड़े धरे हैं । सामद जुड़वा बहन की समता उसे रुला रही है या ग्रामवासियों का निमम व्यवहार । पर वह स्वयं रूपवती हीरावती को रुला सकता है, यह बात यह बीतरागी समयी युवक स्वप्न में भी नहीं सोच सका । वह तो चुपचाप स्वयं ही अपनी शका का समाधान कर कोठरी में लौट आया और साबल चढ़ाकर सा गया । तब तक किसी भी विकार ने उसके निष्कलुष चित्त को दग्य नहीं किया था । हीरावती उसके लिए एक ऐसा सुन्दर जगली गुलाब थी जिसे हवा में झूमते देखना कला पारखी चित्त को निश्चय ही रुचता था, किन्तु उसे तोड़कर कभी सूँघा भी जा सकता है, यह उसने कभी सोचा भी नहीं था ।

दूसरे दिन, तीसरे दिन और कई दिना तक हीरावती नहीं दीखी । 'निश्चय कोठी साहब का प्रेत उसे अपने साथ कब्र में खींच ले गया है,' ग्राम की स्त्रियाँ कहती तो श्रीधर को मन ही मन हसी आती । वह तो हीरावती को माल-असबाब सहित जाती देख चुका था । चलो, अच्छा हुआ । फोडा फूट गया । उसे नश्वर नहीं लगाना पड़ा ।

पर ठीक महीने भर बाद ही हीरावती एक दिन अपने गिलट के आभूषणों की नवली चमक से अपने जीवन की असली चमक को द्विगुणित करती, ग्राम भर की औरतों की छाती पर भूग दलती, अलस पगों से पगडंडी की चढ़ाई चढ़ने लगी तो आगमन में खड़ी उसकी सोत बन गई बहन अपने क्रोध को नहीं रोक सकी ।

'कहा से मुह वाला करके लौटी है अमागी ? वही क्यों नहीं डूब मरी ?' उसने चींखकर पूछा, तो कई स्त्रियों ने झुंड छिडकियों में झाँकने लगे बाहर ही बैठा जनेऊ कात रहा था, नय आभूषणों में जगमगाती

घमककर पलटी, “डूबने ही तो गई थी, दीदी।” वह हसी और उसके गाला के दो मनोहर गडो पर फहराती स्मर ध्वजा को श्रीधर ने पहली बार देखा। ‘डूबने कहा दिया मूए परदेशियो ने।’ कहन लगे—‘हीरावती, ऐसी हीरे की देह को डूबाता भला कौन है ? इसे तो सजाया जाता है।’ यह देखो दीदी, चन्द्रहार, हमेल मूगे की नेपाली माला, सब ले दी परदेशियो ने।”

धूणा से धूककर, बिरभावती न द्वार बंद कर लिए, तो हीरावती अपनी निलज्ज हसी की खनक से पगडंडी गुजाती चली गई।

फिर कई दिनों तक हीरावती नीचे नहीं उतरी। लगता था कि हमदम परदेशियो ने उसके कई दिन तक नीचे न उतरने का प्रबन्ध कर दिया था। कौन जान, बीमार हो पड़ गई हो ? श्रीधर साबता। फिर स्वयं ही झुझला उठता। उसे क्या ? मरे ससुरी हीरावती। पर झुझलाने से क्या होता ? रात को गिलट के आभूषणों में जगमगाती मेनका विश्वामित्र के स्वप्ना के रगमध पर उतर ही जाती और ऐसा उत्पान मचाती कि श्रीधर शिर्वांग के सम्मुख झींघा होकर सुबकने लगता, ‘कैसा दड दे रहे हो, भोलानाथ ? ऐसी नीच स्त्री का पाने को मैं स्वप्नों के धूयाकाश में भी बाहू क्यों फैलाता ?”

उसके समय दुग के किसी अरक्षित छिद्र से ही बिकार का मह सप धुस आया था। अब इसकी कुचलन का एक ही उपाय था। तबके ही उठकर वह साबरमती चला जाएगा और बापू के पावन चरणों में अपने हृदय में छिप कुटिल शत्रु को बाघकर डाल देगा। तभी उसे शांति मिलगी। पर हृदय में छिपा यह चतुर शत्रु क्या सहज ही पकड़ में आता है ? अविवेक, बिकार और मिथ्या दलीलो की पुष्ट शाखाम्रा पर विचरत, इस शाखामग की मानवीय बंधन बड़ी कठिनाता से जकड़ पाता है। रात ही को श्रीधर ने ग्राम त्याग दिया। पर जिस पगडंडी चढ़ उस बस स्टेशन पहुँचना था, उस छोड़ उसने जिस दूसरी छपवेशिनी पगडंडी की उगली पकड़ी, वह अतहीन बनती, उस किसी गहन वन में खींच ले गई। दुरुह पगडंडी की पहली न समझ पान से झुझलाया, क्लान्त श्रीधर एक भरने के पास बैठ सुस्ता ही रहा था कि किसी के कराहने की आवाज से चौंका। क्या उसीकी आवाज काई माग भूल गया है ? माघ का महीना था। ठंड से दाँत से दाँत बज रहे थे। सामान्य सो बूढ़ा-बादी अब गजन-तजनपूण शिला वृष्टि के रूप में चट्टानों पर किसी नुचल तबला-वादक की दक्षता से तिताल में से टुकड़े बजा रही थी। वह लपककर पड़ा के झुरमुट को छाता बनाने को बड़ा, तो कराह की ध्वनि स्पष्ट होकर उसके पैरों में टकरा गई।

“कौन ?” अब बार के काले धम्बल ने उसका गला घोट दिया।

“प्रोह साल साहब, तुम हो ? बचा लिया, धम्मो। मैं हूँ हीरावती।”

जिन बेडियो का बंधन काटन वह ग्राम छोड़कर भाग रहा था, उहीक

लौहपाश ने उसके दोनों पैरों को जकड़ लिया। हीरावती ऐसे मिसक रही थी जैसे सिसकी के साथ ही प्राण निकल जाएँगे।

“पास काटकर लौट रही थी। मोच आ गई। बस किसी तरह खींच-खांच कर मेरी गुफा में पटक दो, लाल साहब। तुम्हारे गुण नहीं भूलूँगी।”

श्रीधर अजीब पशोपेश में पड़ गया। हीरावती को वह खूब पहचानता था। कही बहाना बनाकर वह छाया ग्राहिणी सिंहिका उसे अपनी गुहा में अपनी लोकप्रसिद्ध क्षुधा का आस बनाने को तो नहीं खींच रही थी?

“देर मत करो, लाल साहब। हत्यारा आता ही होगा। देखते नहीं बदबू आने लगी है।” उसने अघय से कहा तो श्रीधर भी चौंक उठा। वनराज की निवृत्त आत्मा, असह्य दुःख को जन्म से ही वनों में रहने वाला श्रीधर भी खूब पहचानता था। वह तड़पकर झुका और भीगी घास पर असहाय पड़ी हीरावती को उसने अपनी बलिष्ठ भुजाओं में उठा लिया।

“आह, धीरे पकड़ो, लाल साहब। पैर में ठेस लग रही है। हाय। मरा हसिया तो उठा लो।” हीरावती ने कराहकर कहा।

“भाड़ में जाएँ तरा हसिया। बाल, कहा है तरी गुफा?” झुझलाकर श्रीधर हाकने लगा। हीरावती की गठी काठी का बोझ असामान्य रूप से भारी लगने लगा था।

सहमकर हीरावती ‘इधर उधर’ करती, कई क्षीण-दुर्बल पगडिडियों का प्रदर्शन करती गुफा तक पहुँच गई।

“बस, यही भीतर पटक दो मुझे। भगवान तुम्हें लाट कमिशनर बनाए, लाल साहब। तुम न मिलते तो अभाग्य आज मुझे खा ही डालता।”

गुहा में प्रवेश करते ही श्रीधर को लगा जैसे वह किसी गम दहकती भट्टी के पास खड़ा हो गया—बाह्य और गुहा के सामान में घरती आकाश का अंतर था। हीरावती को नीचे उतारकर, वह हमाल से पसीना पोछ ही रहा था कि अब तक पगु बनी हीरावती छलांग लगाकर भागी और पास ही धरी एक विराट शिला को लुढ़काकर उसने गुहा द्वार बंद कर लिया।

“बाप रे बाप,” वह लगडाती हुई चट्टान का ही सहारा लेकर खड़ी हो गई। ‘कभी कभी तो बिल्ली के पंजे टेककर आता है हरामी। देखो,’ उसने श्रीधर को खींचकर दरार के पास खड़ा कर दिया। ‘देखो’ वह हसकर फुसफुसाई।

साथ ही साथ एक विकट गजना से वन के ओर छोर गूँज उठे। साहसी श्रीधर को भी पसीना आ गया। गुहा द्वार पर लुढ़काई चट्टान के पास दाना खूनी पंजे टेके, ऋषि मुनियों की जटाजूट सी अपनी सुनहरी अयाल पीताम स्कंधा पर बिखराए कुमाऊँ के ऊँच नरमसी ने दूसरी गजना की।

‘नित्य आकर ऐसे ही बैठ जाता है हरामी, कि जब मौना लगे

गुम्ह टप् से उठाकर मुह म घर स । एक-एक पजा देखा ? कितना चौड़ा है—
तुमसे भी चौड़ा ।”

बड़े साह से हीरावती श्रीधर की हथेली पकड़न को झुकी, तो वह झिड़क-
कर दूर हट गया, छोड़ो, मुझे जाना है ।”

कहा ? 'हीरावती घुंष्टता स मुसकराने लगी, “बाहर पजा टेने तुम्हारा
दादा जी बँठा है और इस छोटी मिडकी स तुम्हारे पहाड़ी 'जतिया' के से कपे
छिटक नहीं पाएंगे । बँठो, मैं भाग जसातो हूँ, चाय पीकर मुस्ता लो । फिर
जाना मैं क्या तुम्हें बाधकर रखूगी ?”

हारकर श्रीधर बँठ गया । बाहर सायद बर्फ गिरने लगी थी । एक अदभुत
शांति और सन्नाह स घिरे, गिरि शिखर स्तब्ध राडे थ । चट्टान के बाहर अद्विग
भव्यता स विराजे वन केसरी वभी अर्पय स गरजते, वभी-वभी—धुनिय की
भाति अपने धनुष व से कपे हिलाकर बर्फ की रुई-सी धुनकर फैला देते हैं ।
हीरावती ने मशाल सी जलने वाली लकड़ी (छिलुक) को जलाकर चूल्हे के
पास गाड़ दिया था । उसी तीव्र शिखा स भालोचित गुहा की चित्र प्रदर्शनी
देखकर श्रीधर स्तब्ध रह गया । क्या यह बाड़ी साहब की एक ही दिव्य सृष्टिका
का चमत्कार था ? कहीं बागडा-गढ़वाल शैली की कृष्णवधू, वर्षा मुखरित
रात्रि के अभेद्य अग्रधार की कुण्डलिया कुचलती, अभिसार के पथ पर बली जा
रही थी कहीं एडिया टिकाए प्रियतम की प्रतीक्षा म द्वार पर खड़ी चौलट म
मडी सुप्रिया । कहीं गुजरात की सोलकी मूर्तिकला का सज्जित करती, दोनों हाथा
की चम्पक उगलियों से नग्न वसस्थल ढांपती अम्तरा और अजता के भित्ति
चित्रो क गाम्भीय का जालबुगती शव द्वारपाल की अविकल प्रतिमूर्ति । खजुराहो
और कोणाक के शादूल, मुर-मुन्दरिया, शालभजिकाए और अप्रूप सुदरी नाग
क्यामा के जाल म अटवता, कला पारखी मुग्ध श्रीधर पूरी गुहा की परिक्रमा
करता, चट्टान व उसी द्वार पर पहुँच, हाथ म गम चाय का गिलास थामे खड़ी
हीरावती से टकरा गया ।

गम चाय ठंडे परा पर छलकी तो वह चौंका ।
लगता है मेरे रनिवास महल न लाल साहब को मोह लिया है । देखा न

बगुला भक्त साहब को ? बड़ा पादरी बना फिरता था । पेट म ऐसी बिद्या भरी
न होती, तो अकेली गुफा म भला ऐसी बँसी नगी औरतो की फोटो उतारता ?
कहीं अपने ईसा की भी एक तस्वीर बनाई पादरी साहब ने ? लो, चाय पियो ।
देखू, चौकोदार गया या नहीं । श्रीधर की गिलास थमा, उसने खिड़की से
झाका ।

गया हथियारा । कितनी बर्फ गिर गई है । एकदम बदरी केदारनाथ बन
गया है । एक बार बर्फ गिरने पर महा सात माठ दिन तक नहीं गलती । चलो,

भकेली से दुकेली भली ।" वह चाय की चुस्निया सेतो श्रीधर के पैरो के पास सिसक भाई ।

मूर्खा हीरावती । वह क्या सोचती है कि श्रीधर कभी बर्फीली पगडंडियों पर चला हो नहीं है ? अभी दख लेगी, कि बंस दोनो हाथ फैलाकर स्वंट सा करता, वह हवा के झोके सा निकल जाएगा । वह चट्टान हटाने को बड़ा हो या कि बर्फीली हवा के एक तीव्र झोके ने तकड़ी की मशाल का झपट्टा मारकर भुझा दिया । घने घघकार में डूबा, वह इधर उधर हाथ पर मारने लगा । जिधर बढ़ता, उधर हो दो सुकोमल बाहों का बचन उसे जकड़ लेता । एक ही हीरावती के क्या खिलखिलाते-हसते बई सस्वरण बन गए थे ? या गुहाभित्ति को सुर सुन्दरियो, अम्तराओं और उसका नाचिबाओ को कोड़ी साह्य के अद्भुत प्रेत ने जीवित कर घरा पर अक्षतरित कर दिया था ? पर मोठा कण्ठ-स्वर तो एक ही कण्ठ का था, और उसे खूब पहचानता था श्रीधर । वह तो निश्चय ही इसी लोक की थी ।

‘मूल मत बनो ।’ हीरावती कहने लगी, कहा भाग रह हो ? ऐसी बर्फीली रात में तो बिडिया भी ढाला पर अकड़ो मरी मिलती है । फिर तुम क्या सोचते हो, कि मेरा चौकीदार चला गया होगा ? सुम्हारी ही ताक में छिपा किसी खदक में बैठा होगा । ऐसी कचन-सी देह उस हरामी के पेट में जान दे, ऐसी मूल नहीं है हीरावती ।”

वह पालतू बिल्ली सी उसके कंधे से अपने सुकोमल कपोल घिसती और भी निकट सिसक भाई । उसने अभी किसी भी स्त्री का स्पर्श तो दूर उसकी छाया का भी स्पर्श नहीं किया था । वह इस पातक अनुभव से तिलमिला उठा । एक नरमझी बाहर था, तो दूसरी नरमझिणी भीतर । अघातक उसकी सममित चेतना सुप्त अग्नि-सी जगकर फुफकार उठी ।

“दूर हट, तूने मुझे समझा क्या है ?” वह उत्तेजा, विवशता और गोप से बुरी तरह हाफता, चट्टान उठाने को बड़ा तो हीरावती दोनों हाथों को बांधे, मांग अवसद्ध कर खड़ी हो गई, “मैं भी देखती हूँ कि यों माई का साल हटा सकता है मुझे ।”

जितनी बार श्रीधर उसकी दपपूण पुगीती से झूझा को भागे बढ़ता उतनी ही बार सतक खड़ी, हीरावती की काचन सतिभ देह को दुर्भेष प्राधीर उसे बिजली के सी सो तारा से झनझना देती । पता नहीं क्या तब दोनों राति के सूचिमेध अघकार में साप नेवले की भांति अपने आमने सामने तो राखे रहे । अन्त में जीत नेवले की ही हुई ।

“आमा,” पराजित योद्धा के दोनो हाथ पकड़कर हीरावती ने मुद्रुल कहा, ‘तुमने क्या मुझ इतनी छोछी समझा है ? हीरावती में साध ३५

कभी झूठ नहीं बोलती। मेरे पास दा पुमाल के गद्दे हैं। एक में तुम निश्चित हावर सोते रहना। जो तुम्हें छुए वह साली गोमास थाए।” हीरावती ने न जाने किस ताक में पुमाल का गद्दा उठाकर जमीन पर डाल दिया और उस हाथ पकड़कर ऐसे ले चली जस पूल क्षय्या की आर किसी सलज्ज बालिका नववधू को ले जा रही हो।

सचमुच ही झूठ नहीं बोलती थी हीरावती। दूसरे पुमाल के गद्दे को लीप कर पटक के जाने की क्षब्ध बेधी जिया से तास रावकर लेट श्रीधर ने अनुमान लगाया कि शत्रु पक्ष ने अपने दूसरे गद्दे का खेमा गाड़ने में व्यवधान रखा था, और उसमें उसको कोई कुटिल चाल नहीं थी।

घोड़ी ही दर में हीरावती निष्पाप शिशु को सी निद्रा में डूब गई। पर श्रीधर व्याकुल करवटे बदलता रहा। अब सोने वाली स्वयं ही माग से दूर हट गई तो दूसरी चिंता निद्रा अपहरण करने लगी। यह दूसरा पुमाल का गद्दा क्यों रखती थी हीरावती? क्या निशाचर प्रतिधियो ने रात्रि यापन की व्यवस्था का प्रश्न प्राय ही इस गुहा निवासिनी के सम्मुख आता हागा?

पर उसका माया क्यों दुख रहा है भला? याम में हीरावती को कौन नहीं जानता? यह कौन सी दूध की घुली सती सावित्री है?

इसी उधेड़बुन में न जाने कब उसकी आल लग गई। सुबह उठा, तो हीरावती ने शायद खिडकी का परपर हटा दिया था। सूर्य का शणिव मूट्टी भर उजाला गुहा में फैलता गुहाभित्ति की झनूठी चित्रकला का नवीन रूप प्रस्तुत कर रहा था। वह भ्रम्य दृष्टि से चित्र प्रदर्शनी के वैविध्य को देख ही रहा था कि उसकी आरों स्वयं हीरावती की ओर घूम गई। उसे लगा कि झुककर प्राण फूकती रूपवती हीरावती को वह आज पहली बार देख रहा है।

हीरावती को भी शायद उसकी भ्रम्य दृष्टि गुदगुदा गई। मुसकराकर उसने सिर उठाया तो झेंपकर श्रीधर ने सहमी दृष्टि ऐसे फेर ली जैसे चोरी करत हुए रंगे हाथो पकड़ लिया गया हो।

‘लो, गरम चाय पियो,’ हीरावती ने उस मिलास धमाका और अपना पुमाल का एकमात्र गद्दा लपेटने लगी।

तो क्या अपने सब पहाड़ी शिल्पे नन्दे उसे ओढ़ाकर वह रात भर ठिठुरती रही?

‘बहुत बफ गिर गई है। तीन चार दिन तक सूरज नहीं निकलेगा।” हीरावती ने खिडकी से झाँककर कहा।

सूय देवता से भी क्या हीरावती की साठ गांठ थी? चार दिन तक निरंतर बफ गिरती रही। चट्टान को भी बफ की मोटी तह न जम जमकर अदृश्य कर दिया। भीमकाय मिहिल मदार और देवदार के वृक्ष हिम भार से दातीन से

तडाक तडाक टूटने लगे । बचपन में पढ़ी भूगोल की पुस्तक में चित्रित, अपनी इगलू से हिमाच्छादित गुहा में श्रीधर बंदी शेर की भांति चक्कर लगाता रहता ।

‘लाख सिर पटको, जज साहब’ हीरावती हसकर कहती है, ‘एक कदम भी बाहर नहीं निकाल सकते ।’

वैसे हीरावती ने अपने रुखे पाहुने की अभ्यथना में कोई त्रुटि नहीं रहने दी थी । न जाने किन अदृश्य आला से वह छाटी मोटी पोटलिया निकालती रहती । दाग, अखरोट, जर्दालू, भुने बाजू, खोए के पेड़े, सोहन हलुवा, भांड में भुजी पहाड़ी गेंदी और घानी नमक । वह सुरदुलभ खाद्य सामग्री उसकी मेजबान ने ख्दान की माला जपकर नहीं छुटाई होगी, यह तब समझता था श्रीधर । ऐसी हुराम की कमाई को वह भला हाथ कैसे लगाता ? दा दिन उसने काली चाय के अघसेरी गिलास गटककर काट दिए । सूखा सा मुँह लटकाए हीरावती भी भूखी ही सो जाती । पर तीसरे दिन हीरावती न सोये हुए अत्रु पर ही आक्रमण कर दिया । श्रीधर के उठने से पहले ही उसने न जान किन किन लुशबूदार पहाड़ी गंध्रेणी और जम्बू के ऐसे मसालों से सब्जी छोक दी कि श्रीधर अपने सारे सस्कार और नाज नखरे भुला विसराकर रह गया । पहाड़ी घट के पिस गेहू की साघी सोघी मक्खन चुपड़ी रोटी पर सब्जी घरकर, हीरावती ने अतिथि के दानो पर पकड़ लिए, ‘क्या भूखे प्यासे बैठे हो लाल साहब । मैं क्या खोमनी हूँ ? फिर तुम तो गांधी बाबा के भक्त हो । वह तो मेहतरों के हाथ की भी छूत नहीं मानते ।’

इस दलील में श्रीधर को पराजित कर दिया । फिर तो पता नहीं एक के बाद एक वह कितनी रोटियां चट कर गया । शायद हीरावती के लिए कुछ बचा ही नहीं । खा पीकर वह सोया तो कुम्भकरणी नींद पूरी होने का नाम ही नहीं लती थी ।

गुहा के अ प्रकार में रात्रि और दिवस के अंतर का प्रश्न ही नहीं उठता था । पर उस दिन पता नहीं क्यों, हीरावती ने नित्य की मसाल भी नहीं जलाई थी । बर्फीली हवा के एक तीव्र झोके से गुहा निद्रामग्न श्रीधर अचानक हड़ बड़ाकर उठ बैठा । हड्डियों को छेदने वाली इस ठण्डी हवा में ठिठुरती हीरावती बिना कुछ ओढ़े पुश्तल के गद्दे पर बैठी होगी, यह ध्यान आते ही श्रीधर को अपने स्वाथ पर स्वय ही खोभ हो उठा ।

“हीरावती तुम्हारे पास क्या ओढ़ने को कुछ भी नहीं है ?” उसने पूछा ।

जो व्यक्ति तीन दिन से बिना एक शब्द बोले, उस आला ही आला में अपने विकट शोध की ज्वाला से निरंतर भूज रहा था, उसका हमदर्दी में डबा बदला गिरगिटो रंग देखकर, हीरावती चौकी । पर जैसे तप्त दहकती मरुभूमि में वर्षा

की पहली बूद पड़ते ही सूखकर बिलीन हो जाती है, ऐसा ही श्रीधर वा सरस प्रश्न भी कठ से निकलते ही सूखकर रह गया।

हीरावती ने कोई उत्तर नहीं दिया। पर अघकार में ठक ठक कापती मानिनी की व्यथा चार कम्बलो से लदे सोने वाले को छू गई। जिसकी रूप शिखा का स्वप्न कई दिनों तक उसकी नींद में दूबी पलकों को झूलसता रहा था, वही उसी अतहीन माधो विभावरी में उसकी जमी पलकों पर साकार होकर धिरकने लगा।

“हीरावती !” उसने थर्राए भराए कठ स्वर से पुकारा। पुरुष कठ के इस भर्त्ताए थर्राए कठ स्वर के आह्वान को तो हीरावती खूब पहचानती थी। विमृग्ध, विस्फारित दृष्टि से अघकार को चीरती मुग्धा अभिसारिका ने एक क्षण का भी विलम्ब नहीं किया।

दूसरे दिन गुहा वातायन का क्षीण कटि से पाँच दिन स रुठे सूर्य न घरा पर गिरी बर्फ का प्रतिबिम्ब लेकर अपना दण्ड चमकाया और श्रीधर चौंकर जग गया। उसके कंधे पर माया धरे हीरावती ऐसी अंतरंग घृष्टता से सो रही थी, जैसे वर्षों से उसी कंधे पर सोती चली आ रही हो।

“भारद्वाज गोत्रोत्पन्न श्रीधर क्षमणस्य सकल ईप्सित कामना।” कुछ ही दिन पूर्व शिवालय में पाथिव पूजन के समय किया गया सकल श्रीधर की स्मरण हो आया। हड़बड़ाकर वह उठने लगा।

हीरावती जग गई। “क्या कर रहे हो ? लेट जाओ न। ठंड लग रही है।” दोनों हाथों से उसे जकड़कर, उसने फिर अपने पाश्व में सुला दिया।

पल भर को निकला सूर्य फिर किसी मेघखंड में बुझ गया और तडातड घोलों के चाटे मार मारकर प्रकृति ने एक बार फिर श्रीधर के विवेक को दूर भगा दिया।

हीरावती अब उसे घाने में बंधी काठ की चरखी सा घूमाती, किसी भी दिशा में उछालकर फिर अपनी ओर खींच सकती थी। वह अब संस्कारी, सुशिक्षित, भारद्वाज गोत्रोत्पन्न श्रीधर क्षमा नहीं था, वह तो अब सदियों के मलबे से निकला आदिकाल का गुहा मानव था, जिसका न कोई गोश्र हो था, न कोई संस्कार। वह डासी पत्थरों को रगड़कर आग जलाना सीख गया था जगली सुलाए भुंजे मांस को चिचोड़ चिचोड़कर खाने की क्रिया में वह अपनी गुहा प्रेयसी के हाथ से अधिक चर्बीली बोटी को लपककर छीन, अपने असम्य जगली ठहाके से गुहा की दीवार गुंजा देता। कभी उसे बाहो में भीच ऐसे रख देता था, जैसे कीमा ही घना देगा। इस युग का पहला नोटनिक शायद वही था। और हीरावती ? उसीको माडल बनाकर क्या पादशी साहब ने गुहा भित्तियाँ अलकृत की थी ? बकिम कटाक्ष में दोदरी की लचक सुडौल भग का उभार यदि इच टेप से भी नापे

जाते तो दीवार पर अक्षित अप्रुव सुन्दरियों की काठी में ठीक बैठती ।

“हीरावती,” एक दिन जानबूझकर भी, वह एक मूर्खतापूर्ण प्रश्न कर बैठा । वह तो जानता था कि हीरावती कभी झूठ नहीं बोलती, “गाववाले जो तेरे लिए कहते हैं, वह क्या सच है, हीरावती ?”

हीरावती का चेहरा भव पड़ गया । इतने आमोद प्रमोद के उत्सव के बीच जैसे उसे किसीने झोटा पकड़कर जमीन पर घसीट लिया हो ।

वह एक शब्द नहीं बोली । रक्तहीन कपोलों पर टपकते आसुओं ने ही श्रीधर के प्रश्न का उत्तर दे दिया ।

वात सच न होती तो क्या मुखरा हीरावती चुप बैठे आसू बहाती ?

एक लम्बी सास खींचकर वह उस दिन बिना साए ही उठ गया । छि छि, कसी नीच औरत थी हीरावती । बर्फ न गिरी होती और मौम साफ होता तो शायद वह गुफा में ही हीरावती के एक दो प्रेमियों से टकरा जाता ।

उस दिन भी हीरावती न जाने कब तक चूहे के पास भूखी बैठे कापती रही । कभी खासता, कभी उसासैं भरता, कभी अकारण ही कराहता श्रीधर कर बटें बदलता रहा । पर अंत में भूखा भिक्षु विवाह भाज के छप्पन व्यंजनों की जूठन देख, एक बार फिर अपना विवेक, सस्कार, निष्ठा—सब भूल भालकर जूठी पतला की ओर बढ़ गया ।

“हीरावती !” उसके धर्राएँ भर्राएँ कठ स्वर ने पुकारा ।

और फिर हीरावती भसा क्यों चूकती ?

छठे दिन कड़ी धूप ने बर्फ पिघलाकर बहा दी थी । हीरावती टूटे वस्त्रों की टहनिया बटोरने चली गई थी । खिड़की पर श्रीधर खड़ा हुआ ही था कि सुदूर पाटी से गुंजते शिवालय के घंटे की ध्वनि सुन, उसका रोम रोम सिहर उठा । ‘पूवहुत पापी ने बहुत दंड दे दिया है, प्रभु !’

उसने अदृश्य शिवलिंग की ओर हाथ जोड़े, “मुझे क्षमा करो और शक्ति दो ।” कहता वह बिना गुहा की ओर दृष्टिपात किए, तीर सा निकल गया ।

फिर उसने अपने ग्राम की देहरी आज तक नहीं लापी । सति की दशा की भाँति उसके जीवन में आ गई हीरावती की क्रूर दृष्टि को उसने कवच किलकों से प्रवाहहीन कर दिया । एक लम्पे घरसे तक वह देश प्रेम का अनोखा दुःसाहसो दीवाना बना फिरता रहा । न उसे ललमुह गोगे का भय था न पुतिस की नाठी का ।

एक बार हीरावती का समाचार उसे जेल ही में मिला था । उसीका परिचित एक साथी उसे जेल में मिलने आया था । ‘अपने गाव की हीरावती भी तो इसी जेल में थी । आज ही बरेनी ले गए हैं उसे ।’

हीरावती ! सहसा अल्मोडा जेल की काली चारदीवारी पर असह्य मुर-

मुन्दरिया और नाग क्याए अकित हो गइ । 'हीरावती ! वह क्या करने आई है यहा ?' और फिर तो उसके अघय अपराध की विस्तृत वणना सुनवर, श्रीधर स्तब्ध रह गया ।

अलकनदा में अपने नवजात शिशु पुत्र की मूंडी डबोए, हीरावती को ग्राम के डाकिये ने दखा और जब तक वह भागकर पटवारी को बुला लाया, नहीं लाश को तीव्र लहरें अदृश्य कर चुकी थी ।

"ऐसी बेइया नगी औरत है" उसका साथी कह रहा था, "हमारे गांव की इफ्तत मिट्टी में मिला दी । हाकिम ने पूछा, 'हीरावती देवी क्या यह सच है कि तुम अपने बच्चे की मूंडी नदी में डुबोए बैठी थी ?'

"सिर झुकाए वैसे ही मुस्कराती रही हरामी, जैसे तुम्हारी अदालत में मुस्कराती रही थी ।

"'किमका था ?' हाकिम ने पूछा, तो बोली 'सरकार, आप तो दिन रात पहाडा का दौरा करते हैं । कई झरनों का पानी पीते हुंगे । कभी आपको जुकाम भी हो जाता होगा । क्या आप बता सकते हैं कि किस झरने के पानी से आपको जुकाम हुआ है ?'

"बटकर रह गए हम लोग अब भुगत रही है, हत्यारिन ।"

भाज इतने वर्षों पश्चात उसी हत्यारिन की स्मृति श्रीधर को विह्वल कर रहा थी । क्या अब भी वही रह रही होगी ? क्या सचमुच ही उन सुकुमार हाथा न अलकनदा की तीव्र हिमशीतल लहरों में किसी न ही सी देह को निमगता से बहा दिया होगा ?

श्रीधर ने हाथ की घड़ी देखी । भाषण की एक भी आवृत्ति पूरी नहीं कर पाया था । न जाने किन किन चिंताओं के गंढे मुँह उखाड़ने में स्वयं ही सिर दब मोल ले लिया । चिंताएँ भी क्या एकाध थी ? कृष्णा पत्नी का चिड़चिड़ा, बिलासी स्वभाव उसे दुरी तरह उबा देता और वह वन बिलास सा अनावश्यक दोरों में जगलों की राक छानता फिरता । चारों पुत्रियों का विवाह कर चुका था, पर चारों जामाताओं की ठगी प्रथा को विलियम बेंटिक की ही भांति जड़ से उखाड़ने के प्रयत्न में वह घर भर से बैर मोल ले चुका था । उधर इफ्तोते पुत्र ने लड़कियों के से बाल बढ़ा लिए थे और पुरखों की कुल कीर्ति पर झण्डा फेरकर रख दी थी । विद्यार्थियों की हड़ताल हुई तो काला झंडा लिए उसके कुल-दीपक ने ही स्वयं पिता का पुतला जला, विद्यार्थी समाज में अपना विनिष्ट स्थान बना लिया था । जहां नेता का पद प्राप्त करने में पिता की सबस्व त्यागना पड़ा था, वहां पुत्र न तीन ही दिन में सान बसें जला, असह्य सरकारी इमारतों के बेंच तोड़ एक रेलगाड़ी उलट नता का सर्वोच्च पद अनायास ही प्राप्त कर लिया था । उसी अशांति से बचने श्रीधर, सिर मुड़ाकर घर से भागा, तो ओले पड़ने

लगे । अपनी जन्मभूमि के सूखा ग्रस्त इलाके का हवाई दौरा करने निकला, और उस विस्मृत घाटी में खम्बाड से ताजमहल के गुम्बद न दबे नासूर को फिर उभार दिया ।

‘सारी, सर ।’ पी० ए० ने खिसियाए विवश स्वर में कहा, “आपसे मिलने एक पगली सी औरत आई है । कहती है कि आप ही के गांव की है । बस दशन करके चली जाएगी । मानती ही नहीं ।”

पी० ए० अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि पगली सी औरत सिर पर मैली पोटली में गुड की भेसी बांधे सजे कक्ष के रेशमी पर्दे के पास फटे पैरों से बिपक गई ।

‘यह कैसे आ गई यहा ? क्या मेरी इच्छाशक्ति इसे खींच लाई ?’ मन ही मन श्रीधर सोचने लगा । पर धिरोधी पक्ष की दुधारी तलवारों से दिन रात जूझने वाला सनानी चौकना हो गया । उसका पी० ए० एक नम्बर का घाघ था । वही हीरावती के कलुषित अतीत का आशिक विवरण भी सुन लिया होगा तो प्रेस रिपोटर की सतकता से मन की कलम सभाल ली होगी पट्टे ने । और दिन रात अपने कई सहकर्मियों की चरित्रहत्या को क्या स्वयं दिन दहाड़े नहीं दग चुका है ?

‘माफ़ो माफ़ो बहन हीरावती,’ उसने हसकर कहा ।

हीरावती चौंकी । अब तक वह मुग्ध दृष्टि से श्रीधर के विलासी कक्ष के भित्ति चित्रों को ठीक वैसे ही देख रही थी जैसे पच्चीस बप पूव श्रीधर ने उसकी गुहा भित्ति को देखा था ।

‘बैठो, हीरावती ।’ बलात स्वर में अब प्रणयी का घरिया आह्वान नहीं था । यह तो एक थका मादा पथिक दूसरे पथिक को दो घड़ी साथ बठकर सुस्ताने का स्नेहपूर्ण निमन्त्रण दे रहा था । पर सकुची सिमटी सी हीरावती मलमली सोफे पर नहीं बैठी । वह सिर की पोटली बिना उतार ही, श्रीधर के चरणों के पास ऐसे बैठ गई, जस गली के शरारती छोकरों के ढेल-पत्थरों से नित्य मारकर भगाई गई कुतिया को बहुत दिनों से बिछुड़े मालिक ने पुनःकारकर धुला लिया हो, और वह डरती हुई बड़े अविश्वास से आगे बढ़ रही हो ।

‘हीरावती, तुम चुप क्यों हो ?’ श्रीधर का गला भर्रा गया ।

इतने बपों बाद भी इस अलौकिक नारी की उपस्थिति उस भूमत सम्मोहित नाग सा झुमा रही थी ।

कितनी भटक गई थी हीरावती । फिर भी छरहरे वालों में चांदी चमकन लगी थी । होठों की मधुर लालिमा नीली पड़ गई थी । निमग्न नयनों की बाला भवर पुनलियों ने कितनी पीड़ा सही थी, उसका लेखा जोखा लिखने में अनाड़ी विधाना ने स्याही आखों के ही नीचे फैलाकर रक्त दी थी । फनी वास्वट पर

मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़कर वह झुलने लगा ।

निमत मन्दिर के सम्मुख लगे छोटी-बड़ी झोपड़ों के गट्टों में छुते ही
जलतरंग का झुबुर खनक स देवल्लभ दूर रहा । इन्हीं में एक छोटी झोपड़ी
धीरे-धीरे काँच का विस्फोट पाटो में झटके पड़ने की भाँति से गई ।

इस पल्लवित पापाग देवी की चित्त में स्थित हुई के समस्त मनुज-मनु
हो, उमने जितना कुछ माया है । पुत्रियों के लिए वह बड़ा पत्नी से सुख
गुरु को समझि, पुनाव को जान । परन्तु जो मनुज जो ब्रह्मण्य है न देवकी ।
पत्नी में निपण, मन-दरिद्र बाधक झल्ले मुँह झटझट मना रहा । छान-छर को
जब लगा कि धरीर से उरमिन् न होने पर नै काना फटा बहाना फटफटाती
मिर पर मला पाटली में गूह को मनी घरे डो-झड़नी उसकी आशङ्कनी गूहा
प्रयसी उमक पास सटकर बंटी करा म्व में आ रही ह

कदपा नो कदपा, कगिया नो करिया
करिए ठिना, ठिना में पम् ।”

पुष्पहार

रोग की विषम व्यवस्था न बड़ी डोरीदार छात्रों को किसी गजेड़ी की छात्रों का सा रक्तिम बना दिया था। बड़ी दाढ़ी और ऊबड़ खाबड़ मुँहों से भावपूर्ण पपड़ियों से बीभत्स बन गए सूखे होठों को उसने चाटा और पेट के मोटे तने का सहारा लेकर बैठ गया। लगता था दयालु डाइवर और क्लीनर उम्र बेहोशी में ही उस दानव से वक्ष की उदार छाया में लिटा गए थे। एक ठण्डी हवा का भोका उसे सिर से पैर तक सहला गया। कहा गई पेट की शूल वेदना और कहा गई पैर की सूजन? कौन सी जगह थी भला यह? बाड़ेछीना ही तो था वह, प्रासनमृत्यु भी क्या उसकी स्मृति को घुघला कर सकती थी?

दयालु ट्रक डाइवर सरदार से उसने हाथ जोड़कर भीख मागी थी—'बस, बाड़ेछीना तक पहुँचा दो सरदार जी। अपने गांव के किसी पेट के नीचे भी जाकर लेट जाऊंगा तो ठीक हो जाऊंगा डाइवर साहब।"

सीमेड के बोरो पर सिर रखते ही शायद वह बेहोशी में डूब गया था। जब से कोयले की खान का घमाका उसे पेट का यह शूल रोग दे गया तब ही से मिरगी सी यह बेहोशी भी पीछे लग गई थी। पर आज उसकी सारी व्यवस्था घुटकियों में स्वयं उड़ गई।

नीले समुद्र का उदार नीलाकाश, दोना और सप्राचीर सी उठी घाटिया के बीच किसी तबगी सुदरी अलहड किछोरी सी घिरकनी नदी, पास पास फली चौड़ी हुरीतिमा, जैसे डबल भ्रज की हुरी इटलीन का पूरा मान खुला पड़ा हो। क्या यह सपाट मैदान रानीचेत के प्रसिद्ध गोल्फ कोर्स से कुछ कम था? नदी के बगार पर खड़ा शक्तेश्वर का अर्वाचीन मंदिर, नदी में नगा नहाता मंदिर का पगला पुजारी, पहाड़ियों पर घरींदे से चमकते सुपे और तिलाडी के गांव, गले में गदे फटे बस्ते लटकाए स्कूल से सौटती बलरव करती ग्राम्य बालकों की टोली, इसी टोली के साथ सात मील पैदल चलकर उसने भी तो इसी ग्राम पाठशाला में पढ़ा है। फिर क्या वह इसे पहचानने में भूल कर सकता था?

अपने ही पौष की बैसाखिया टेकता यह मेधावी छात्र जब एक दिन अचानक ही छलाग लगाकर देग का मंत्री बन गया तो किसीको भी आश्चर्य नहीं हुआ। पर उसकी क्षणभंगुर समृद्धि की अनालमृत्यु का कारण भी यही छलाग बनी। जैसे अचानक डबल प्रमोशन पा गया मेधावी छात्र भी कभी कभी

एक साथ मिल गई दो कक्षाओं की समृद्धि को नहीं समेट पाता और एक बार फिर नीची कक्षा में उसका प्रत्यावर्तन हो जाता है, ऐसा ही उसके साथ भी हुआ। जनता ने जिस उत्साह से उसे गेंद सा ऊपर उछाल दिया था, उसी उत्साह से नीचे गिरा भी दिया। आज सड़क से लगे जिस पागर बंध की छाया में वह लावारिस लाश सा पड़ा था, कभी उस सड़क का उदघाटन उसीने किया था। ग्राम के खभो में झूलते बिजली के नये तार, नये नये बरताये किशोर बटुक ब्राह्मण की नगी छाती पर सुशोभित नये यज्ञोपवीत की डोरियो से ही चमक रहे थे पर किसकी योजना थी यह ?

मन्त्री की आखें छलछलता उठी। कितने विरोधी सदस्यों के चक्रव्यूह में अभिम यु बनकर उसने अपने चिरदरिद्र ग्राम के लिए इस योजना की भीख मांगी थी। शत सहस्र समृद्ध हाथों से करमदन करत करते उसकी कलाई दुखने लगी थी। लक्ष लक्ष भारी पुष्पहारों के असह्य भार से गदन टूटकर रह गई थी। कितने भोजस्वी भाषण, कठ की कैसी गुरुगजना थी उसकी। स्वदेश की गिरि-कदराए जाने गूजकर सहम जाती। बाकपन से झुक आया घुघराले बालों का गुच्छा चौड़े माथे पर सदा एक ही अंश में बिररा रहता। वह पूरे मन्त्रिमंडल का सबसे छोटा और सबसे मुह लगा सदस्य था। पहाड़ी क्षेत्र के एक समृद्ध जमींदार परिवार का सबसे छोटा दुलारा बेटा, जिसे प्रजातन्त्र के सहमे नागरिक फल की छड़ी से भी नहीं छू सकत। यह ठीक था कि जनता जनादन कभी भी उस जमींदारी का उन्मूलन कर सकती थी और उसका भविष्य भी किसी उजड़ जमींदार के एयाश पुत्र की ही भांति अधकारमय हो उठेगा पर उसके उवर मस्तिष्क की घरा सोना उगलने वाली घरा थी। उल्टे हाथ से भी बीज बिखेर लेगा तब भी हरी भरी फसल ही लहलहाएगी यह वह जानता था।

वैसे तो वह राजनीति की सिद्धांत कीमुदी मा के गभ से ही रटकर गाया था पर सबसे प्रमुख सूत्र का एक पट्ट शायद उसने बिना पढ़े ही उलट दिया। लोकप्रियता की अमर वूटी खाकर आए घाघस घाघ राजनीतिज्ञ की भी निर्दोष पुष्प में छिपे सप की भांति नारी का सौंदर्य विषधर डसने पर पल भर में ही अपने घातक विष से निर्जीव बना घरा पर लुढ़का सकता है यह वह जानता था। उसका ज म पहाड़ के एक निम्न मध्य-वर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था पर उसकी अकड़ बाकपन बोल चाल उठक चठक नम्रता, किसी में भी रंग रूट का नयापन नहीं था। उसका डीलडौल लम्बा, रंग आकषक रूप से गेहूँ और आखें बड़ी बड़ी थी। पतली मूछों से भेल खाती तीखी नासिका के बीच बीच में फड़कते पतले नथुन उसके आँधी स्वभाव के परिचायक थे पर विलामी मोटे अधरो पर बात बात में थिरकने वाली उज्ज्वल हसीयुक्त चेहरा देखकर मानवस्वभाव की गुत्थिया सुलझाने वाले को भी उलझन में डाल देती थी। यह

व्यक्ति शोधी भी हो सकता था और शिशु सा सरल आनंदी भी। चेहरे का मुख्य आनंदन था उसका बग़ाय घोर बठ का आश्चर्यजनक वक्षोपन।

दो वर्षों की छाती की अवधि में नियति उसे दतहीन असहाय शिशु की हो भाति गोदी में उठाकर त्रिमी जादूगरनी की सी उड़ान में लोकप्रियता, समझि और वैभव के सर्वोच्च शिखर पर उड़ाती रही थी पर उसी क्रूर झिलवाड की सनक में उसने उसे धरा पर पटककर रख दिया और आज वह ऊंची उड़ान में उड़ती चील के मह स गिर क्षत विक्षत अवसर सप सा ही एक बार फिर अपनी उसी जन्मभूमि पर पड़ा था जहाँ ये नियति उस आच में दबाकर उड़ गई थी। जिसका पातक विष, लपलपाती जिह्वा और कृष्ण नाग का सा पन अभी पवत से वसिपाली शत्रु की भी एक ही डक से परलोक पहुंचा सकता था, आज दुर्भाग्य की नही चींटिया से मुचा वही विवश पड़ा था। क्या पता, उसकी मा ही अचानक इस माग से निकल पड़े। पर इतने वर्षों तक क्या वह उसी गाव में बैठी होगी? हो सकता है अपने भाई के पास चली गई हो। पर वह अपनी मा की जिद की जानता था—प्राण रहते वह अपनी धाती नहीं छोड़ पाएगी। वह पुत्र के मंत्री धाने पर भी, उसके लाख समझान पर भी उसके साथ उसकी बड़ी कोठी में रहने लखनऊ नहीं गई थी। जब बेटा देश का राजा बना तब भी वह दूर दूर के जंगलो में कुतुवमीनार से ऊंचे पहाड़ों देवदार और अमार वृक्षों की सर्वोच्च शाखाओं पर शास्त्रामुगी बनी लकड़िया तोड़ती, अभी बकरिया के लिए पड़पा की पत्तिया के स्तुपाकार गटठर के नीचे दबी ऐसी दुहरी होकर घर लौटती कि बिवाईया से फटे दो पैर ही पैर दिखते। लगता, कोई हरी भरी पहाड़ी ही चली आ रही है।

उस दिन वह चुपचाप एक परिचित मित्र की जीप मागकर मा से मिलने चल दिया। टोकरी भर दशहरी आम भी वह उसके लिए ले जा रहा था। उसकी मा को आम बेहूषण पसंद थे और अपने अभावग्रस्त शैशव की स्मृति को में भी भूला नहीं था जब मा-बेटे बारी बारी से एक ही आम को चूस उसकी गुठली का भी मुडन कर रख देत थे।

चार वालिस्त की तग सड़क पर नाचती, गोल घूमती जीप की पहाड़ी दक्ष द्राइवर ऐसे नचा रहा था, जैसे चतुर नट पिता दोलक की थाप के साथ पतली रस्ती पर अपने पुत्र को नचा रहा हो। कभी घर से गाड़ी घूमती, एक साथ कई चक्कर साती, उस्तरे की धार से तीखी सड़क पर फिसलने लगती और मंत्री का लोहे का बलजा भी घड़कने लगता। उसे लगता, जीप अब खाई में गिरी और अब खदक में। पर दूगरे ही क्षण तीखी चढ़ाई पर हाफती, वापती शिथिल फुफ्फुयारों छोड़ती जीप मृतप्राय इसके की मरियल घोड़ी-सी ही पराजित

हा तीन चार कदम पिछड़ आती । मूढ़ इनके के चालक की भांति झाड़वर से लगाता और अनुशासनपूर्ण अनुभव के आरारे चालक से सहमी गाड़ी एक बा फिर तीव्र गति से भागने लगती । वह उसी तीव्र गति से भागी जा रही थी । एक अश्रयाशित मोड़ पर घूल उड़ाती भेड़ बकरियों के झुंड को पहियों के नी आन से बचाने के लिए मोड़ से स्वयं उसलटते उलटते बच गई । कुशल चाल का चेहरा क्रोध से तमतमा गया । पल-भर भी चूमता तो गाड़ी ही नहीं, उसकी नौकरी भी चली जाती । मन्त्री भी झूलता गया था, भटके से उसकी कीमत घड़ी टूटते टूटते बची थी और जोप के लोह से टकराकर माथ में गूमड उभ आया था । पर उन भेड़ बकरियां के पीछे दो पतली गोरी बाह फैलाए जी की गति से भी तज भागती किशोरी को देखकर चालक और मन्त्री, दोनों कठो की भरसना कठो ही में अटककर रह गई ।

एक पल को दोनों उस देखत ही रह गए । भेड़ियाघसान की धूल घूमिल प्राकृति अब स्पष्ट होकर बड़ी घुष्टता से उनके सम्मुख लड़ी ही रही थी । वह झाड़वर से बहने लगी, "क्या करूँ, झाड़वर ज्यू बबरा हरामजादियों को डडा मारकर बिनारे कर रही थी । वैसे यह कुमाऊँ यूनियन की गाड़ी ब टैम भी नहीं था, नहीं तो मोटर टम में मैं खुद ही इन्हें चराने नहीं लाती ।"

स्वयं मन्त्री का गांव एक से एक सुंदरी चाचिया, ताइया और भाभिया भरा था । जब राजाओं के समय से ही उसके ग्राम की ग्राम्यामा के सीदय ब रूपाति दूर दूर तक फैलती आई थी और इसीसे चापद नाम भी पड़ गया था रतनपुर । पर यह लड़की क्या रतनपुर की थी ? क्या पहचाना पहचाना चेहरा लग रहा था, फिर भी नाम क्या याद नहीं आ रहा था भला वहीं ताऊ के लड़के घरणीघर दा की साली तो नहीं थी यह, जिसके रूप में चर्चा सुनत सुनते उसके बान पक गए थे और मा भाभी में परम आग्रह से लग गए जिसके रिश्ते को उसने खाटे सिक्के सा फेर दिया था ?

"ऐसे मोटर लड़के पर बकरिया लाती ही क्यों हो ?" अब तक मन्त्री । धार उस बिस्ते भर की छोवरी न आल उठाकर दवा भी नहीं था और चालक से ही हस हसकर बातें कर रही थी । वह मन्त्री का घरवा, इसीसे ब की रोबीला बनाकर उसने मन्त्री स्वर में गजना की, "ऐस इन्हें मत ला करो ।" किशोरी ने कपकप केकरे केकरे की और दृष्टि उठाई । मन्त्री मन्त्री मुद्रा उससे भूक प्रश्न पूछ रही थी—दगती गहो, किसकी गाड़ी है यह मूख लड़की, क्या हाथ भी नहीं जाड सकती ?

तब कैसे लाऊ जी ?" हसकर उम घुष्टा बिनारी न पूछा । माती उज्ज्वल दतपविन के दपन में घुमाये मन्त्री की घनम्यस्त आँखें चौधिया । "इन बकरिया को भी जोप में बिठाकर चराने लाऊ क्या ?"

मन्त्री की दृष्टि अब गोरे ललाट पर बंधे, भौदनी के फंटे से उतरकर कंधोय से उज्ज्वल दो धाखो से फिसलती, तीखी नाक और फिर लाल रस भर भ्रमरो से सरक, तारी वाम्फट पर उभर सहसा सपाट होकर झूलती चादी की जजीर पर निबद्ध हो गई। सूय की प्रस्वर विरणो में जजीर झिनझिला रही थी। किसी क्षीण पहाड़ी जलप्रपात की गो पतली स्पहली युगल धाराएं जैसे दो कठोर शिलाखंडों पर क्षण भर विराम करती अनिल राशिभूत तरंगों में बिखर गई थी। "किस गांव की लडकी है तू?" मन्त्री ने डपटकर पूछा। अब निश्चय ही सहम जाएगी छोकरे। "रतनपुर की है क्या?"

क्यों?" पतली नाक को उसने एकदम कपाल पर चढ़ा लिया। लगता था, अभी अभी जोभ निकालकर मुह चिढ़ान लगेगी। 'क्या रतनपुर में ही सब 'बान' (मुदरिया) बसती हैं?" और फिर वह घुट उत्तर के साथ भुवन मोहिनी हसी का जाल बिखेरती, एक बार भी पीछे मुड़े बिना चली गई।

विराधा पक्ष की निमग्न घूसबाजी ने भी कभी मन्त्री को ऐसे धराशायी नहीं किया था। फिर जिस सरकारी जीप के चालक के सम्मुख वह उसे घुटकियो में उड़ाकर रख गई थी, वह भी मूछो ही मूछो में मुसकरा रहा था।

'तुम जरा रुकना, डाइवर।' उसने बड़ी आत्मीयता से कहा, जैसे वह मनी नहीं, स्वयं डाइवर का ही बड़ा भाई हो। "बड़ी भूल हा गई पहचानने में। यह तो हमारे घरणीदा की साली है। चलकर जरा भाभी की कुशल पूछ आऊ।"

'गाड़ी मोड़ लू, सरकार?" घाय चालक भी शायद समझ गया था कि प्रभु भाभी की नहीं, भाभी की सुदरी सहोदरा की ही कुशल पूछने भाग रहा है। कभी गाड़ी मोड़न का आदेश नहीं देगा।

'नहीं नहीं, तुम यही रुके रहना, हम अभी आते हैं।' चलते चलते मन्त्री ने दोनों हाथा में ढेर से ग्राम भी भर लिए।

'निकाल ले, निकाल ले।' हसकर मन के चोर ने कहा, डरता क्यों है? मा के उपहार की टावरी से किसी दूसरी के लिए मीठे फल चुरान वाले, क्या तू ससार का पहला पुरुष है? यह चोरा तो श्रत्येक ससारी पुत्र करता है रे।' वह उस दिशा की ओर लपका।

लडकी बहुत दूर नहीं गई थी। तभी से मुड़ गए एक दूसरे मोड़ के टीले पर वह पीठ किए बैठे थी, गूँधे पत्तों की चर भर सुनकर वह चौंकी।

तुमसे माफी मागन भागता आया हूँ, दुर्गो।' माफ करना इतने सालों बाद तुम्हें देला, इसीसे पहचान नहीं पाया।'।

पर वह रुठी गर्वोत्ती राजकन्या तो नि शब्द उसी टीले पर बैठी रही। उस मुग्धा मानिनी की अनूठी छवि मन्त्री के वपों से अघवारपूण हृदयवक्ष में

बिजली सी कौंध गई। घुटनों से कुछ ही नीचे तक लटका काला लहंगा किसी विदेशी आधुनिका की मिनी स्कर्ट के से आदाय से साचे में ढली नगी सफेद टांगों का उन्मुक्त प्रदर्शन कर रहा था। दोनों हाथों से मोदी में नहे मेमने को साधे वह सौंदर्य लक्ष्मी ऐसे तनकर टीले पर बैठी थी कि स्लेटी पत्थर का रुखा टीला रत्नखचित राजसिंहासन सा दीप्त हो उठा था।

"माफ़ कर दिया ना?" मन्त्री के कंठ में कुछ अटक सा गया। वह दीन पाचक की मुद्रा में एक बार फिर हसकर और निकट खिसक आया। पर वह तनी बैठी रही। मुडोल कंधा का उसने उदासीनता से किसी विदेशी चलचित्र की तारिका की भांति हिलाकर गदन फेर ली। मन्त्री अवाक रहा। जो छोकरी कभी मोटर पर भी नहीं चढ़ी होगी उसने ऐसे विदेशी अदाज में कंधे झटकना कैसे सीख लिया? जिस मुद्रा का, वे विदेशी नायिकाएँ शायद निर्देशक के चाबुक की मार से सीखती हैं, उसे प्रकृति ने अपनी इस मुहलगी पुत्री को स्वयं ही सिखा दिया था। स्पष्ट था कि उस समाधान नहीं मिला।

सात वर्ष पूर्व अपनी इसी अनायास रूपवती बहन को लेकर, भौजी उसके पास आई थी। तब वह क्या जानता था कि भाभी की वह नाक सुनवती मरियम सी बहन एक दिन ऐसी बन उठेगी?

"बहुत सुंदरी है मेरी बहन। ठीक से देनागे तो भाखें नहीं फेर पाओगे, लल्ला।"

"सब बड़ी बहनें अपनी कुमारी बहनों के लिए यही कहती हैं, भौजी।" उसने वह प्रस्ताव हसकर वहीं फर दिया था।

"भौजी के लिए घांटे से आम लाया हूँ दुर्गा। कहना, बल मिलने आऊंगा," मन्त्री ने आम उसके परो के पास धर दिए और हसकर कहने लगा, "गंगोली हाट की कष्ट वाली के चरणों में फल रख रहा हूँ। देवी, प्रसन्न हो ना? भक्त हाथ बाध खा रहा है।"

अपनी बड़ी-बड़ी भाखें उठाकर उसने मन्त्री को देखा। वह सचमुच ही हाथ बाधे घुष्टता से हस रहा था।

उसकी यही हसी तो उसके मधुर स्निग्ध अविचलित भाव का भुनहला चोखट थी। इसकी हसी के आकषण से प्रत्येक चुनाव में विपक्षी दल के शत सहस्र वोट भी उसीकी ओर झुकते हैं और स्वयं गिर जाते। उसकी यही हसी कष्ट और मित्र दोनों को समान रूप से बाध सकती थी। इसी हसी के आकषण से उस दिन रात न जाने कितने महिला मंडल की गारिष्ठियों के रंगीन रिबन बाटन इधर-उधर भागना पड़ता और पुष्पहार के भार से गदन टूटकर रह जाती।

यहां तक कि कई विश्वविद्यालय उसे एवं साथ दोघात भाषण के लिए

“घोत चुके थे। जहा अय सम्मानित अतिथि वर्षों की देश सेवा, जेल-यात्रा आदि का पासपोर्ट-वीसा दिखाने पर भी पल भर छात्रों की हूटिंग के सम्मुख नहीं टिक पाते, वही पर यह हसमुख मंत्री केवल इसी स्मित के इद्रजाल से अनुशासनहीन छात्रों को बाधकर बगल में दबाए चला आता।

इस बार भी उस हसी की मूठ व्यथ नहीं गई। वह हसने लगी और युवा मंत्री का कलजा जिह्वा पर आकर घडकने लगा।

तुमने मुझे नहीं पहचाना पर मैंने तो तुम्हें देखते ही पहचान लिया।” उसके गले में बीच-बीच में होता स्वरमग मंत्री को मिश्री की डली सा मोठा लगा।

तुम्हारी शादी हो गई क्या?” उसका उतावला प्रश्न उसके कंठ से अनजान में ही गेली सा दग गया।

प्रश्न पूछते ही वह अपदस्थ हो सकोच से लाल पड़ गया।

क्या तुम सोच रहे थे तुम्हारे लिए अब तक कुमारी बंठी हूँ? वह हसकर उठ गई।

हाय, यह बित्ते भर की छोकरी उस राजनीतिज्ञ खडपेंच की कैसा पिस्सू सा मसल रही थी। खर, वह भी उस गर्वीली छोकरी के विष के दात तोड़ सकता है अभी बहुत अवसर आएंगे। वह बोला, “मच्छा, चलता हूँ दुर्गा। कल स्कूल के मदान में भरा भाषण है। तुम भी आना और भौजी को भी लाना, समझी?”

उसने बड़े गव से, चौड़ी कलाई में बधी कीमती घड़ी को देखा और सिर की तिरछी टोपी और भी तिरछी कर ली।

“और इसे? इसे भी ला सकती हूँ क्या? यह तो मुझ एक पल भी नहीं छोड़ता।” अपने पैरों के बतावे से सफेद टखने चाटते छोटे नम हूयिया पक्षम वाले मेमने को उसने उठा गालों से लगाकर पूछा। तब कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी मन को सदा चावुक की मार से साधने वाला जितेंद्रिय तद्वर्ण हठयोगी न ही ठोकर से दूर घाटी में क्षण भर पूव गिर गए ग्राम के दाने की ही भांति लुढ़कता, अविवेक की घाटी में गिरकर चक्काचूर हो गया। कैसी निर्दोष मुद्रा में पूछा गया कैसा साकेतिक ग्रामनयणपूर्ण प्रश्न था। लाल लाल कदील से लटक रहे नुश पुरूपों की छाया में वह ऐसे मादक स्मित का आह्वान देती खड़ी हो गई मंत्री का लगा, वह मिसलटा व नीचे खड़ी प्रणयोमद भत्ता कोई विदेशी स्वयंश्रुती है। किस प्रसिद्ध चित्रकार का ऐसा ही चित्र देखा था उसने? रविबर्मा, राबल या किसी विदेशी चित्रकार का? मोद में नहें मेमने को गालों से सटाकर जाना पहचाना सा स्वर्गीय स्मित ही उस ले बैठा। जिसने कभी नारी की छाया का भी स्पष्ट नहीं किया था और जिस बहुचर्चित स्पष्ट

की कभी स्वप्न में भी कामना नहीं की थी, वही आज पागलखाने से भाग निकले मत्त उमत्त की भाति मेमने सहित स्वामिनी को अपनी सशक्त बांहों में भरकर बार-बार घूमना हाफ हाफ गया। जिस समय अकुश से वह वर्षों की प्रमानवीय साधना से अपने पौरुष के मत्त गजराज को साधता घाया था वही अकुश आज पंचशर से विद्या दूर पड़ा था। पुरष के अघर नारी अघरो के प्रथम स्पर्श के नीचे किसी किशोरी के कुम्हार अघरो की भानि घर घर काप रहे थे, जैसे पहली बार ससार का निवृष्टतम पाप किया हा। और नारी के रमीले अघरों पर था स्वाभाविक स्मिन्, जैसे कुछ हुम्मा ही नहीं हो। ठीक ही तो था, वह क्या उसका पहला चुम्बन था।

मन्त्री तटस्थ होकर पीछे खिसक गया। उसके चेहरे पर हवाइया उड़ने लगी थी। हे भगवान क्या कर बैठा था वह। पल भर की आवेशपूर्ण मूलता उसकी जीवन भर के लिए ले बैठ सकती थी।

उसने हडबडाकर इधर उधर देखा। ईश्वर की कौसी महान कृपा थी कि डाल पर कहीं एक बीमा तब नहीं था।

वही न हा मेमना गोदी से उतरकर घास चरने लगा था, और एक मोटा सा घाय दुवा कुटिल बकिम दृष्टि से उसे ऐसे देख रहा था जैसे सब कुछ समझ गया हो। मन्त्री को पहली बार लगा कि पशु बोल भले ही न पाए, व्यग्य से भुसकरा अवश्य सकते हैं।

उसने सहमी दृष्टि से दुर्गों को देखा। वह भेड़ों को हे हे कर ऐसे हाकती बटोरने लगी थी जैसे उसे देख ही नहीं पा रही हो। वह तेजी से उतार उतरता, फिसलता चला गया।

दूसरे दिन उसका भाषण सुनने दूर-दूर से ग्रामा की भीड़ समय के कुछ पूर्व ही आ जुटी थी। ग्राम पाठशाला का पूरा मैदान भर गया था और कुछ लोग तो उच्च उच्चकर पेडा पर चढ़ रहे थे। भीड़ देखकर मन्त्री की छाती और तन गई। उस दिन उसकी आकषक हसी वर्षों से धुली पहाड के मकान की अवरणी पधरोली छत सी ही और स्वच्छ निखर झकझक चमक रही थी। यह क्या सुंदरी नारी के सज्जिक स्पर्श का जादू था ?

जिधर देखो उधर ही गोरे गोरे चेहरे पके आडू से स्वस्थ गालों की लालिमा और निर्दोष चावनी। वह गव मे एक बार फिर तन गया। बाणी के घृतनीप की कई ओजस्वी बातिया दप दप कर एक साथ जल उठी।

“भाइयो।” वह कहने लगा, ‘मुझ गव है कि मैंने इसी ग्राम पाठशाला में वणमाला से प्रथम परिचय प्राप्त किया है। तख्त की वाली पाटी पर कमेट की स्थाही स बान पकडकर ‘अ मा’ सिखाने वाले मेरे गुरु श्री ब्रह्मदत्त तिवाडी

इस भीड़ में जहाँ वही बैठे हो, मेरा कृतज्ञ प्रणाम स्वीकार करें।”

“गुरु ता गुड चेला शक्कर।” भीड़ के किसी उद्धत छोकरे की तीखी आवाज और भीड़ की हसी को चतुर मन्त्री ने वही पर जूते से कुचल दिया— ‘पर चेला शक्कर की ही भाँति अब व्यर्थ हो गया है। भाइयो।’ उसने हसकर कहा ‘गांव का बादशाह अब भी गुड ही है। मैं पूछता हूँ कि बाज़ार किसका है ? चार रुपये किलो चीनी का या दो रुपये किलो गुड का ? किसे चाहती है जनता ?’

गुड गुड।” भीड़ से सम्मिलित बण्ड गूजे। बाबाल मन्त्री की दलील ने भीड़ को जीत लिया। उसी विजय से भूमकर उसने फिर अपनी मनमंहुक हसी का ब्रह्मास्त्र फेंका ‘फिर ? दया ना आपने, ग्राम की जनता हमेशा गुड ही को पूजगी।’

जनता तुमल करतल ज्वनि से बीच ही में भाषण रोक अपना उल्लास व्यक्त कर रही थी कि मन्त्री की दृष्टि भीड़ में भीजी के पास बैठे दुर्गी पर पड़ गई। उसकी गोदी में उसका वही मुहलगा भमना बैठा था। आखिरी चार होत ही उसने बड़ी दुष्टता से भमना तनिक उचकाकर मन्त्री को दिखा दिया। आज वह अनासा शृंगार कर आई थी कानों में गोल पोल बालियों के स्थान पर य भूमके जिनके दु सहु भार की गरिमा को दो चौड़ी शृंगार पट्टियों में विभक्त कर सीधी माग के अगल बगल कर टिका दिया गया था। सिर का पल्ला भी शायद भूमको के वैभव के उचित प्रदर्शन के लिए जान धूमकर ही नीचे गिरा दिया गया था। चादी की जज़ीर का स्थान आज चादी की मोटी हसुली ने ल लिया था। नाजूक गदन में पड़ी हसुली के उसी अधवत्त्र में मन्त्री घटककर अपनी समस्त राजनीतिक प्रगल्भता भूल गया। केवल हाथ जोड़कर वह मुस कराता मच से उतर गया।

तालियों की गडगडाहट हाथों ही में गूँज रही थी कि वह भीड़ चीरता भीजी के पास चला आया। झुककर उसने भीजी के चरण छुए, कई वर्षों के उपालभ सुने फिर उठे मना अपनी जीप में बिठा घर तक पहुँचा आया। भीजी को उसने बड़े लाड से अपनी सीट पर बिठा लिया पर दुर्गी बिना कुछ कहे पिछली सीट पर बैठ गई। गोदी में वही भमना था।

मन्त्री कुछ सभलकर बैठ गया। पर वह शायद और निकट खिसक आई। मन्त्री को लगा कुमाऊ बण्ड के साथ नाचने वाले सिन्धे पड़े दुधे की भाँति यह सिखाया गया दुवा उसकी माला ही नहीं, शेरवानी भी चर जाएगा। उसने गले की माला उतारी और पीछे मुड़, हसकर बोला, बुरुष के भीठे फूलों की माला है शायद तुम्हारे भेयने को बहुत पसंद आ गई है।’

फिर ऐसे सवे अदाज से उसने माला फेंकी कि ठीक दुर्गी के गल में पड़

गई। पल भर को दुर्गी का चेहरा लाल पड़ गया, पर फिर हसकर सचमुच ही माला दुबे को खिलाने लगी।

“मुझे यही उतार दो दीदी।” उसने थोड़ी ही दूर जाकर कहा।

बहती नदी से लगी पनचक्की थी और उसीसे लगा था दुर्गी का घर। वह उतर गई तो भौजी ने उसे सब बतला दिया, जब उसने रिश्ता फेर दिया तो उसका विवाह उसने एक फौजी सूबेदार से कर दिया। कच्ची सुदरी वहन को जब तक घर में बिठाए रखती? सूबेदार दुहेजू था पर तीन तीन भैंसें थी, कच्चा भेड़ बकरिया थी और फिर पनचक्की भी उसीकी थी। पर छोकरी का भाग जो साथ लगा था, पाकिस्तान की लड़ाई से तो वह सकुशल लौट आया, लेकिन घर में खुभी एक नही कीत न बाया पैर कटवा दिया, तब हा लगडा दिन रात नशे में डूबा पड़ा रहता है। दुर्गी ही घर और बाहर का काम सभालती है।

उस बार दो दिनों के लिए घर आया मनी माठवें दिन लौटा, और फिर तो उसका हर महीने एक न एक चक्कर लगता रहता। लगता था, वह अपने ग्राम को डिजने लैण्ड ही बनाकर छोड़ेगा, देखते ही देखते कच्ची सड़क ने कंचुली उतार दी। फक्क करसा बुलडोजर, निरीह पहाड़ी घाटिया का कलेजा रौंदने लगा। पीपे के पीपे कोलतार की मोटी तहो ने पीली धूप भरी सड़को पर शहरी व्याधि की स्पाही फर दी। डायनामाइट की दित दहलाने वाली गजना आए दिन प्रस्त गिरि कदराए गुजने लगी। फिर नई बनी क्षीण कलेवर की सड़क पर भफसरो की जीप गाड़ियां आइ, मंत्री की फडा लगी बनी ठनी वेश्या सी इठलाती चमकती गाड़ी और फिर आइ देश विदेश के पयटका से लदी लक्जरी बसें।

देखते ही देखते वह ग्राम हवाई द्वीप सा ही प्रसिद्ध हो उठा। जहा का शुद्ध पहाड़ी घृत अपनी पावन सुगंध की सुश्रुति कभी दूर-दूर तक फैलाता आया था अब 'चूर' की मिलावट से अपने सुनाम पर कालिख पोतने लगा। पास ही में मिलिटरी की एक बड़ी टुकड़ी भी आ गई थी। सीमा के प्रहरी शराब की हुडक लगने पर घेले टके में ट्राजिस्टर बचने लगे और धीरे धीरे ग्राम में बदरा ने भी भदरक का स्वाद लेना सीख लिया। जो सुरम्य घाटिया मभी परी चाचरियो के मधुर झोडे गोतो से गुजती थी अब वियदाता से गिराणी गानो से गुजने लगी। एक लाट्री खुल गई। जिस ग्राम में गिराणी की भी ही मिठाई मानी जाती थी, वही एक व्यापारकुल हलवाई में पहाड़ की प्रसिद्ध बालसिधोडिया की ऐसी भव्य दुकान खोला थी जिसे सामान्य आदमी की भांति मिठाई का स्वाद लेना भूल, रंगीन मगमोहक डिब्बा में ही स्वाद लेने लगे।

अपनी नवीन अभिसारिका से मिलन के क्षणों की गूँथ में ॥

लैंड याट के चतुर आसूसों को भी धिस्सा दे सकता था। दोनों वहाँ मिलत हैं कब मिलते हैं यह पूरे एक बरस तक कोई नहीं जान पाया। आधी आधी रात को कुमाऊ के वियाबान ग्राम की तलहटी में चौकीदार बन घूमते दु साहसी मंत्री गुनगुने पानी की उस झील के किनारे बैठा अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा करता जहाँ से एक बरस पहले नौ फुटा बाघ नहा रहा पटवारी ने जवान पुत्र को खींच ले गया था। कभी दोनों केवल प्रणय का जिरह बस्तर पहन उस अरण्य की हरीतिमा में हरे युगल सप से ही लिपटकर एकाकार हो जाते। पर लगडा चीर ना हो गया। उदार विधाता जब मनुष्य से उसका कोई भ्रग छीनता है तो स्वयं ही उस क्षतिग्रस्त भ्रग की क्षमता किसी दूसरे रूप में उसे लौटा भी देता है। भ्रमों की दृष्टि क्या उनके स्पर्श में नहीं समा जाती? अपनी इसी अमानवीय घ्राण शक्ति से लगडे ने सब कुछ सूँघ लिया। पत्नी की साकल नित्य की भाँति बढ़ रही थी पर वह जगली विल्ली सी, नीची लिङ्की से सटे तिमिल बक्ष की डालिया पकड़ जिस रस सागर में डूबकिया लेन जाती थी, उसका सुगंध से उसके नथुने फड़कने लगे। वह नित्य की भाँति दोपहर की रोटी पट करने भाँती तो वह भारघ्य से सुदरी पत्नी के अचानक अनजान बन गए चेहरे को एकटक देखता रहता। इतनी बड़ी आँखें तो इसकी नहीं थी। और वास्करट? लगता था, एक लम्बी साँस लेते ही सारे बदन टूटकर रह जाएँगे।

‘कहा जाती है सूर दिन भर?’ एक दिन उसने प्रभुत्वपूर्ण स्वर में पूछ लिया।

“बकरियाँ को घास चराने।” वह उत्तर देकर तीर सी निकल गई थी। लगडे की आँखों में विवशता के आसू छलक आए थे भार उसन सारी राटिमा उठाकर लिङ्की से बाहर फेंक दी थी। दिन भर साली हरामजादी बकरियों के साथ खुद कसी कसी हरी घास चरती है वह चेहरा देखत ही समझ गया। फिर कई रातों स बैठकर अभूतपूर्व कौशल से बनाई गई बसारी के सहारे लगडा एक रात को पुलिस के कृते की भाँति पानी की सूँघता, पेडा के मोटे तनों में छिप छिपकर उसके जल विहार को देख आया। दूसरे दिन पहुँचा तो पूरा ग्राम पक्षी सहित उसके साथ था। वे सबल भी नहीं पाए थे कि भीड़ ने घेर लिया। क्रोध से उत्तेजित लगडा किनारे से ही भड़ी गालियों के पत्थर बरसाने लगा। मंत्री सिर झुकाए और गहरे भवर में उतर गया। जो भीड़ तालियों की गड़ गडाहट से उसका स्वागत करती थी, वह उस अश्लील थूक के छोटों से छेन्न लगी।

रंगे हाथों पकड़े गए चार की भाँति वह सिर झुकाए अदालत में खड़ा था। न उसका कोई गवाह था न वकील।

किन्तु दुर्गा गजब के दु साहसपूर्ण कौशल से तरती-तरती किनारे तक आ

गई, फिर उसन किसी तीरथ के खुले घाट पर नित्य नहाने की अभ्यस्त कुल वधुओं की भांति जल में ही किनारे से खींची गई अपनी धोती का तबू तान बड़े धैर्य से कपड़े पहन लिए। न उमके चेहरे पर लज्जा की एक रेखा थी न अप्रदस्थ होने का सकोच। फिर बिना भीड़ की ओर देखे वह अपने प्रेमी को बीच भंवर में छोड़कर लम्बी डगें भरती न जाने किस पगडंडी की भूलभुलैया में ओझल हो गई। पर मंत्री को क्रूर भीड़ ने 'रेडगाड' की क्रूरता से बाहर खींच लिया। जिन गलियों से कभी चुनाव जीतने पर उसे नदादेवी के डोले की भांति सजाकर शखघर और पहाड़ी तूरी दमामे के साथ जुलूस में ले गए थे, वही से उस दिन वह बलि के बकरे सा ही निममता से घसीटा गया। रात भर थपपड़, घस और लगड़े की बैसाली की मार खाकर वह वेदम पड़ा था कि न गान कहा से उसकी मा को पता लग गया। उसकी भूठ, घात और दुनाली ब दूक सी छूटती बारूद की लपकती सी गालियों से पूरा गांव थर थर कांपता था।

'हरामियों!' वह गरजी, "जब मेरा बेटा मंत्री बना उसने पहले तुम्हारे गांव को ही बन्दई बनाया। कोई अपन लिए ता कोठिया गड़ी नहीं की। उसका यह इनाम दिया है तुमने? हे गोस्ता देवता, मैं भी देख खूगी और याय तुम भी देखना जिन जिनने इसे मारा है, उनकी लडकी का लडका, गाय की बछिया निपूती हो। उनकी राड बहुए सूनी भाग और सूनी कलाइया लेकर चिता चढ़ें।"

सहमकर थपड़ भीड़ जैसे हवा में उड़ गई। बुढ़िया अंधमरे पुत्र का घर तो ले गई पर बेटा रात ही को लिडकी से कूदकर निकल गया। राजगद्दी से विधिवत् नीचे खींचकर पटक जाता, इसके पूर्व वह स्वयं ही गद्दी का मोह त्याग बनबासी बन गया। पूरे दो वष तक उसने असम के साधुओं की चिलम साधी फिर तीसरे वष जब गाजे चरस की दम भी असाध्य बलुप की व्यथा की मलिन नहीं कर सकी तो वह आसनसोल के कोयले की खान में उतर गया। दिन दूव वह काली खान से काला चेहरा लेकर लौटता तो सगता पिछले बलुप की कालिमा स्वयं दब गई है। अब यह चेहरा लेकर वह सगी मा के सम्मुख भी खड़ा होगा तो शायद वह भी भूत समझकर चीख पड़ेगी। यही भूल थी उसकी। पुत्र का चेहरा कितना ही काला क्यों न हो, मा क्या कभी पहचानने में भूल कर सकती है?

कोयले की खान के जिस घमाके के लिए खान के मजदूरों की पत्निया अपना सुहाग नित्य हथेली में लिए फिरती हैं उमी घमाके न एक दिन दमते ही दमते सैकड़ों मांगी का मिट्टर लूट लिया।

मंत्री ने इधर दाढ़ी रख ली थी। अघजली दाढ़ी झुलसा चेहरा और घुरी

तरह सहमा कलेजा लेकर वह स्ट्रेचर पर बाहर लाया गया और थोड़ी देर बाद डॉक्टरों जांच ने लाश बताकर कोने में पटकवा दिया। वह बोल नहीं सकता था पर घबड़ली पलकों के नीचे पुतलिया सचेत थी। एक एक लाश को पहचान कर आत्मीय स्वजन विलाप से दिशाएँ गुंजा रहे थे।

हाय, वह लाश समझकर कोने में पटक दिया गया था फिर भी उसके लिए कोई राने वाला नहीं था। चुपचाप वह लाशों की विरादरी में छिटक गया। उसी घिसटते मुँह को किसी दयालु न अस्पताल में पटक दिया। दो महीने बाद जब वह निकला तब पट की बेदना भी हाथ पकड़कर साथ चल दी। फिर न जाने कितनी टिकटहीन यात्राएँ की रक झाड़वरा से दया की भीख मांगी और प्राण अपने ग्राम के उदार वक्त्र की छाया में पड़ा था।

मा की ग्राम की और सबसे बड़कर दुर्गों की स्मृति उसे सहसा व्याकुल कर उठी। वह बड़ी चेष्टा से उठा और एक एक पेड़ पत्ते को पहचानता अपनी लाश घसीटन लगा।

अचानक एन परिचित खिलखिलाहट ने तानकर भाला फेंका जो उसके कलेजे के द्वार पार हो गया। सामन खड़ी थी एक जीप और उसका द्वार पकड़े दुर्गों खिलखिला रही थी। चालक की सीट पर बैठा एक लम्बा चौड़ा फौजी उसे हाथ पकड़ अपनी ओर खींचता पहाड़ी में बह रहा था—'देर मत कर, दुर्गों! देखनी नती दिन डूब रहा है आ, बैठ जल्दी।'

तब ही वह झुनसी दाढ़ी लेकर सामने सड़ा हो गया। मानिनी के जिस उपालभपूर्ण कटाक्ष को मंत्री ने पहचाना वह उसके लिए नहीं उस फौजी अफसर के लिए था जो उसे गाड़ी में बैठने के लिए मना रहा था। "हाय राम, यह तो कोई मुहँझा घबड़ला मुरदा ही चित्ता से भागकर आ गया है क्या?" वह लपककर चालक के पाइल में बैठ गई।

कुछ पलों को वह लंबा तगड़ा फौजी अफसर भी उस प्रेत के से ककाल को देखकर सहम गया फिर उसने डपटकर पूछा "कौन है बे तू?"

"सरकार," वह गिड़गिड़ाने लगा "बीमार हू। अपनी गाड़ी में गिठाकर कुछ दूर पहुँचा दो।"

उत्तेजित साम की धौंकनी से झुनसी दाढ़ी फटे चीपड़े पर्दे की पल भर को हिली पर देखने वाली ने पपड़ी पड़े होठा पर उमरे अतीत के एक भी रसील स्मृति चिह्न को नहीं पहचाना।

"लद जा!" फौजी ने बड़ी उपेक्षा से कहा और उसने बैठते ही बड़ी तेजी से गाड़ी उतार पर छोड़ दी। तेज झटके से झुनसी दाढ़ी पल भर को सामने की सीट की मराल ग्रीवा से छू गई। उसके जी में आया, वह दोना बापने हाथों

की माला वैसे ही साधकर उस नाजुक गदन में डाल दे, जैसे तब डाली थी ।

“कहा उतरेगा वे ?” फौजी ने फिर उसी उपेक्षा से पूछा ।

पिछली सीट से कोई उत्तर नहीं आया ।

“ले, उतर जा यहा, हम आगे नहीं जाएंगे,” एक अरण्य के मोड़ पर जीप रकी पर वह नहीं उतरा ।

“क्यों इसी गाड़ी में मसान तक जाने का इरादा है क्या ?”

फौजी ने बड़ी बेरहमी से उसे खींचकर सड़क पर खड़ा कर दिया । वह उमत्त पटी आंखों से एकटक दुर्गों को ऐसे घूरन लगा कि उसने सहमकर फौजी की बाह पकड़कर कहा, “जल्दी चलो, वही यह सचमुच ही मुसल्ले चूड़ीवाले का परेत न हो ।” दो दिन पहले ही ग्राम के चूड़ीवान की बाग खींच ल गया था । जीप झगूठा दियाकर चली गई । मंत्री को लगा कोपले की खान में फिर घमाका हुमा है । अदृश्य लपटों में वह झुलसकर गिर पड़ा ।

जब होश आया तो सूर्य वन वनातर रगता धीमी गति से डूब रहा था । तीन घंटे में तीन फलांग की दूरी पार कर वह घर की देहरी पर खड़ा हुमा तो दोनों पैर ठक ठक काप रहे थे । कापत हाथों से उसने साकल खटखटाई “कौन है इतनी रात गए ?” मा का कंकश स्वर सुनत ही वह फिर लडखड़ाकर गिर गया । द्वार खुला । सहमकर मा पहले दो कदम पीछे हटी, फिर कबाल पर झुक गई ।

जब से घेटा भागा था, वह सिरफिरी सी होकर रात भर पूरे ग्राम को गालिया दती रहती थी । पर जिसे पूण रूप से स्वस्थ प्रेमिका नहीं पहचान पाई थी, उसे उमादिनी मा ने पहचान लिया । वह पागला की भांति उसे घूमने लगी । उसी अमृत स्वरूपी चबना की बौछार में उसने बड़े यत्न से मुस कराकर मा का हाथ पकड़ होठों से लगाया और फिर बेहोशी में डूब गया ।

“अरे प्रभागा, क्या मुह ताक रहे हो ?” बुढ़िया चीख चीखकर अदृश्य बिरादरी को घीत रही थी— ‘दखते नहीं, वह जा रहा है । अरे हरामियो एक दुकड़ा सोना ले आओ भागकर, गगाजल और तुलसी दल सुनते नहीं क्या ? हाथ तुम्हारी बोगजली बहु बेटिया सुनी माग और सुनी कलाइया लवर चिता चढ़ें ।’ इस गांव को महामारी चाटे । बज्जर गिरे ।

ग्रामवासी सोते रहे । उमादिनी बच्चा का तो यह नित्य का प्रलाप था । उधर वह स्वप्न देख रहा था । ग्राम पाठशाला की भीड़ के बीच वह गव में भमता भाषण कर रहा है । भेमने को गोद में लिए दुर्गों को देखत ही भाषण कठ में घटक क्यों गया ? सब हस रहे हैं । कोई भी तानी नहीं बजाता । एक भी माला गले में नहीं पड़ती ।

‘मा ।’

उसी माँगें मोल दी। कपोला पर घामू की धारा बहने लगी—“क्या है मेरे राजा ?” बुढ़िया न पुत्र व वेदा विधुर चेहरे की कापन हाथा में भर लिया।

“सुनत नहीं हो हुरामियो ?” बुढ़िया छाती पीट पीटकर फिर चीगन लगी—‘हाय, जब मंत्री था तब कितनी मासाण सेबर भागत थे उसके पीछे आज एक माला के लिए तरस रहा है मेरा बेटा।’

पर वह नहीं तरस रहा था। वह फिर सपना दग्गन लगा था। हगती मुस कराती दुर्गी बसी हो लास बुद्धा की माला हाथ में लिए उस पहनाने बसी आ रही थी, जसी उसने कभी अपने मनने की गिला दी थी। मंत्री न दान कापन हाथ जोड़े मोर गदन मडा दी। हाथ विपित होकर छाती पर गिर पड़े पर माला पहनाने को बकी मन्न उसी विजयी मुद्रा में बिचो रह गई।

‘के’

“क्यों, आपकी माताजी चली गई ?”

फिर वही बेतुका प्रश्न ! भुभुलाकर शेखर ने हाथ की पुस्तक पटक दी और उठ खड़ा हुआ ।

इधर उधर सचानी दृष्टि का घेरा डालने पर भी कोई नहीं दिखा । चाहता तो वह अभी ही दीवार फाद, उस रहस्यमयी प्रश्नकर्त्री को खींचकर बाहर ला सकता था, पर वह सत स्वभाव का मकान भालिक जानता था कि उसके मकान के दूसरे भाग में, पांच प्रोढा, ससारस्यामी विधवाओं की राममण्डली रहती थी, स्त्रियों के बीच वह कैसे जाता ? पर निश्चय ही प्रश्न उन पांचों में एक के कंठ का भी नहीं था । वे नित्य ब्राह्ममूर्त में, अपनी ‘राम राम’ लिखी ग्राइसक्रीम की सी गाड़ी को ठेलती, सगम की ओर निकल पड़ती और दिन डूबे लौटती । तब यह कौन थी ?

एक बार उन पांचों ने अपने गुरुदेव के आगमन के उपलक्ष्य में विराट भंडारे का आयोजन किया था और प्रसादी कुछ अधिक मात्रा में खा जाने पर पांचों को एक साथ हैजा हो गया । उसकी पत्नी ‘के’ ही उन पांचों को एम्बुलेंस में लादकर अस्पताल ले गई थी । कैसे मर्दाना चेहरे थे उनके और कैसा रूखा कठस्वर । यह भीठी हसी निश्चय ही उनके गलों की नहीं थी । चार दिन से जैसे ही वह ‘के’ को अस्पताल पहुंचाकर लौटता और पढ़न बैठता फिर वही प्रश्न “माताजी चली गई ?” एक दिन तो उसने उच्चकर दीवार से झांक ही दिया । राममण्डली के दालान में एक लम्बी रस्सी लगी थी, उसपर कई रामनामी साड़ियां सूख रही थी । एक और एक चमचमाता पीतल का वनशा धरा था और एक मचिया पर कुछ मिर्चें सूख रही थी । आसपास कहीं कोई नहीं था । आज वह निश्चय ही ‘के’ से कहेगा । पत्नी कमला को वह इसी नाम से पुकारता । ‘के’ आती ही होगी— वह पुस्तक लेकर भीतर आ गया । उसके कमरे में पहुंचते ही उसकी ‘के’ तीव्र आधी के झोके की भांति आ गई । वह हमेशा ऐसे ही आती थी । द्वार भट भटाती कुत्सिया धकेलती वह हाथ का आला मुलाती हाफ रही थी ।

“ओ शेखर, बस दस मिनट निकालकर आई हू, भूल के मारे आते कुलबुला रही हैं ।” वह जोर से एक कुर्सी पर घम्म से बैठ गई, और उसने ऐसा प्रश्न पूछा जो प्रायः पति अपनी पत्नी से पूछता है, “क्या-क्या है खाने में आज ?”

“सब तुम्हारी पसन्द का है ‘के’, भरहर की दाल, भुर्ता, खड़े मसाले का सालन और रायता।”

“चावल। चावल नहीं बनवाया, शेखर?”

अपनी मासल बाहुओं का त्रिकोण उनाकर ‘के’ ने नहीं मुहलगी बातों की भाँति अपने गप्पू से गाल फुला लिए।

“तुम डाक्टरनी होकर भी भूल जाती हो ‘के’, चावल तुम्हारे लिए जहर है इ सुलिन लिया या नहीं?”

‘के’ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

“क्यों रुठती हो डालिंग” शेखर ने अपनी प्रणयभीनी मुस्कुराहट से उसे मनाने की चेष्टा की, “तुम्हारे लिए तो हमने भी चावल छोड़ दिया है।”

ऊपर के रीश्तेनदान से सटी दो आँखें आश्चर्य से फैलती जा रही थी।

दोना थाल परसकर आ गए। शेखर अपनी नाजुक अंगुलियों से चपाती के नहे कीर सालन में ऐसे डुबोकर बुतर रहा था, जस मुह में दात ही न हो, उधर ‘के’ अपनी भट्टी चौकीर पड़ाड़ी भिण्डी सी अंगुलियों को चाटती चटखारसी पूरी चपाती का एक ही निवाला बनाती ठूसती जा रही थी। हर कीर के साथ उनका मनगल प्रलाप चालू था।

“छेड़ी सालन खूब बनाता है पट्टा, आज शाम को कोफ़े बनवाना शेखर, पर देखते रहना, नहीं तो आधा भी ग्राफ कर देगा। आखिर है तो जात, का नाई। वैसे भी अच्छा खानसामा हमेशा चोर होता है। इसनी बात गाठ बाध लो, शेखर, ईमानदार नौकर कभी अच्छा खाना नहीं बना सकता। अगर आज शाम को कोई बच्चा जनने न आ घमकी तो पक्कर चलेंगे डालिंग।” फटाफट चटाचट पढ़ चपातिया भकोस तीन विलम्बित लय को डकारें ले ‘के’ उठ खड़ी हुई।

शेखर भी नपकिन से अपनी पतली मूँछें पोंछ पत्नी को विदा देने उठ गया।

“आने से पहले फोन कर देना, तुम्हें चाय तैयार मिलेगी ‘के’,” वह मुसकराया।

“तुम्हारे रहते मुँह कौन-सी बीज तैयार नहीं मिलती, शेखर” सुरसा की भाँति मुँह खोले वह अपने तरुण पति को विदा चुम्बन का प्राप्त बनान लपकी, तो रोगनदान वाले ने मुह में समाल ठुम लिया। हाय, बेचारा अपनी दादी की हमउम्र पत्नी कक्षा से बूढ़ लाया। ठीक ही वह रही थी मोसी, चाद का टुकड़ा है हमारा पड़ोसी और ऐसा शरीफ कि चार साल से साथ रहते हैं, पर भजाल है जो कभी आँख उठाकर देख ले।

मन ही मन किशोरी को हसी आ गई थी, देखता भी क्या बेचारा। देखने लायक चीज हो और किसी पुष्प की आँखें न उठें तो मैं टोंगा तले छिरक जाऊँ। मोसी और उनकी चार बराहदारी सहेलिया भी मला कोई देगने की बीज थी।

ग जाण ।

रात को कोई देग न तो डरके भ
मौमी किगोरी की भभनी मौ
घाठ नि पत्ने यही मौमी अनाथ
बीच से लीच उसके अभिभावक ता
प्रकार से घरानायी कर अपने मा
किगोरी के कपारे मोटे मपना रा
या । उसकी समुगन वाला ने नी
भट्ट हो गई । ठीक परा के समय
मौमी ने उसे हाथ परखकर ज

“आपपर हम आताही मामा
उगलते पुत्र की छोड़ उठ गए थे ।

“अनाथ का हम भी पुत्र गम
प्रसिद्ध बचीन थे ।

“मिरगी के रोगी को विज्ञान की
किगोरी की घट्टन से लीच ले गई
इण्टर का रिजल्ट निकालते ही हम
आद्वामन दिया था ।

मौमी का तब दिन भर वातन
कम म भभनी रह जाती । नी बड़े
कुन की गलिया म भूमिगया न वह
के स्तूपानर गट्टर जरी-गलमा नि
चमत श्रीकृष्ण का गन विपाल तैल
की न्यून पादुका । मौसी उसे ताने

भाक मत करियो तरा समुग बाग
लगाए रहगा इमीस ताला डाल जा

पर चंचल किगोरी नय पकड़े
पिजरे मे चाच मारती रहती । कहा
की ताजी स्मति महमा जगाए और
फिर यह यदिनी का जीवत ।

वह तो चार पांच दिन से यह नि
गौर रग है और वंसा ऊचा बंद पर
दादी की ब्याह तामा । वह भी वंसो
वाल, उसपर चमत की वैसे है वेहया—

मौमी उसे पूरी बहानी सुना चक

ही थी और राममण्डली की हेड रामनी । अभी
विगोरी की ठीक विवाह के सात फेरी के
हताई को अपनी लपलपाती जिह्वा के घातक
म से आई थी । इसी पिछले रविवार को,
सुनहरा प्रामाद भरभराकर चर-चर हो गया
धोखा दिया या राम जाने साऊ की ही मति
दूल्हे को मिरगी का दौरा पड़ गया ।
हर लीच लिया ।

धलाएगे,” विगोरी के मुस्तार इदसुर, फेन

कनी है,” किगोरी के मत मौमा, हाईकोर्ट के

अनुमति अदालत कब से देने लगी ?” मौसी

“तुम खाओ पियो, मौज करो, तुम्हारा
तुम्हे बोर्डिंग म डाल देंगी ” मौसी ने उसे

करने निकल जाता और वह उस विराट

खड़े कमरे थे, न पलग न कुर्सी, न मेज,
नी की पत्रिकाए न उपयास । ‘कल्याण’

रे जडे ‘ऊ’ के बीच मे नखरबंद अगुठा
अ और समूमा की खीकी पर धरी गुब्बे

बंद कर जाती थी । “लेख, केशी ताक-
चार सी बीस है न जाने कहा से ताक

है ।”

ए जगली तोते की भाति अपने चमचमाते
खिया के साथ ही ही ठी ठी धधूरे विवाह

वरवम मुलाए गए सहस्र अरमान, और

य नवीन नाटक मिले जा रहा था । कितना
मरे को और कोई नहीं मिली, जो अपनी

बदसूरत, फूले फाले गाल, सन से सफेद
ह तो मारे शम के मर गई थी ।

थी । डॉक्टरनी के पिता बहुत बड़े लमी

दार थे। अपनी कुत्सित पुत्री के लिए वर नहीं जुटा पाए, तो डाक्टरनी बना दिया। ईश्वर भी तो सब ओर से घातें नहीं मूदता। रूप में वचिता किया पर बुद्धि का कोठा ठसाठस भर दिया। कमला डाक्टरनी बनकर निकली तो अगुलियों से प्रमत सजीवनी टपकने लगी। नाडी घरते ही रोग का निदान कर देती वह विलक्षणा डॉक्टरनी। कैंसा भी कठिन प्रसव क्यों न हो वह पल भर में सुलभा देती। पिता की मृत्यु के पश्चात्त वह मा के भारी गहने पिता के शेर और प्रट्ट बटर समेट अपनी नई नौकरी का भार समालने शहर चली गई। अब वह प्रौढ़ हो चली थी। पेशे में सदा से घिसी भजी अगुलिया और मज गई थी, पर विराट बगले के एकाकी प्रवास ने उसके मदनि चेहरे की और भी रूखा और कठोर बना दिया था। बल्कि कई लोगो का तो कहना था कि उसकी विलक्षण प्रतिभा का राज, उसके कठोर स्वभाव और रूखे कण्ठस्वर में छिपा है। पीढा से कराहती जल्बा की वह एक ऐसी घमकी लगाती कि गमस्थ शिशु सहमकर भूमि पर आ जाता। ठीक जैसे बिदेगो में अथाह समुद्र की जलराशि के बीच जहाज म यात्रा कर रही इसकी दुक्की जल्बा को बंदूक दाग सहमाकर घनाडी खलासी प्रसव करा देते थे और नवजात शिशु का नाम घरा जाता था 'मन प्राफ ए गन', ऐसे ही यह रोबदार डॉक्टरनी अब तक न जाने कितने 'संस ऑफ गंस' को अपने कण्ठस्वर की बंदूक दागकर जमा चुकी थी।

डॉक्टरनी के मित्रो की सरया प्राय नहीं के बराबर थी एक तो वह पेशे में चतुरा नारी जानती थी कि डॉक्टरी पेशे में अधिक मित्र न बनाना ही बुद्धि मानी है। बिना फीस के मित्रो को देखो फिर उनके मित्रो को देखो। वह बिना फीस के किसी रोगिणी की नब्ज भी नहीं छूती थी। मगल को वह घर पर ही मरीज देखती थी इससे डोली, पालकी तागो इक्को की एक लम्बी कतार दूर तक ऐसे बिची रहती जैसे फाफामऊ का बाजार लगा हो। एक दिन वह ऐसी ही लम्बी कतार को बारी बारी से देख रही थी कि ब्यू के अंत में खड़े एक सिर मुड़े स उदास पीले चेहरे के युवक को देखकर चौंक गई। चेहरा कुछ कुछ पहचाना लग रहा था। सदा वह ब्यू के क्रम में खड़े व्यक्तियो को बिना ब्यू तोड़े उसी क्रम से बुलाया करती थी पर उस पीडित सुंदर चेहरे की अनकही व्याप न उस पिघला दिया।

"जामो उस लडके से पूछकर आओ क्या वह मरीजा को अपने साथ लाया है ? वहा घबड़ाया मा लग रहा है" उसने अपनी कम्पाउण्डर से कहा। घाघ कम्पाउण्डरनी चौंकी आज तक तो कोई किनना ही घबड़ाया क्यों न हो, मालकिन कभी नहीं पसीजी।

"उमका कोई बीमार नहीं है सरकार कहता है घाघ ही से काम है।"

डॉक्टरनी की उत्सुकता बढ़ गई उममें मिलने जाने तो आज तक अपने

मरीजों के ही प्रतिनिधि बनकर आते थे, इस छबीले जवान को भला उससे कौन सा काम हो सकता था ?

डॉक्टरनी ने उसे अपने निजी कमरे में बुलवा भेजा । वास्तव में उस नव युवक के चेहरे की कमनीय काति दशनीय थी । उसका रंग, पाण्डुरोग की सी पीली काति लिए था । बेचारा ! कमजोर लिवर का शिकार होगा, डाक्टरनी ने मन ही मन उसकी जाच कर ली थी ।

“कहिए, मैं आपकी क्या मदद कर सकती हूँ ?” डाक्टरनी ने नुस्कराकर पूछा ।

युवक बेहद धबराया लग रहा था, उसने बिना कुछ कहे ही एक लिफाफा बढा दिया । मुशी जी की लिखावट देखकर डॉक्टरनी चौकी । उसके पिता के मुशी के हाथों से लिखा गया अनुनयपूर्ण पत्र था, वे एक लम्बे अर्से से बीमार हैं, बचने की उम्मीद कम है, शेखर, उनका इकलौता पुत्र, इलाहाबाद में ही किसी आत्मीय के यहाँ कठिन परिस्थितियों में पढ़ रहा है, अब उसी मेघावी पुत्र का वं उसके पास बड़ी आशा से भेज रहें हैं । उनकी मृत्यु आसन्न है, क्या शेखर को उसके चरणों में वे डाल सकते हैं ? अपना छोटा भाई ही समझ लेना बेटी,” उन्होंने लिखा था ।

‘तुम मुशी जी के बेटे हो ?’ डाक्टरनी ने चश्मा उतारकर मेज पर धर दिया ।

“जी,” युवक ने आखें झुका ली ।

“क्या पढ़ रहे हो ?”

“जी, इसी वष फिजिक्स में एम० एस सी० का फाइनल दे रहा हूँ ।”

“कहा रहते हो ?”

“अंतरमुद्र्या में पिताजी के तार के दामाद हैं, उन्हींके पास रहता हूँ ।”

‘ओह, बड़ी दूर की रिश्तेदारी ढूँढी, आजकल तो अपना ही दामाद नहीं पूछता, फिर तार का दामाद भला क्या पूछेगा । यहाँ क्यों नहीं चले आते ? क्यों यहाँ आना पसन्द करोगे ?’

‘जी,’ युवक हड़बड़ाकर उठ बैठा, “मैं इस इरादे से नहीं आया था, असल में बात यह है कि पिताजी नहीं रहे,” अचानक यह सम्बन्धग युवक नादान बच्चे की भाँति सुबकने लगा । बीच-बीच में वह पैंट की जेब में हाथ डाल, रुमाल निकालने की चेष्टा कर रहा था जिसे शायद वह घर पर ही भूल आया था ।

डॉक्टरनी ने अपना रुमाल उसका धोर बढा दिया वह कृतज्ञता से गद्गद हो गया, आपको बहुत मानते थे पिताजी, कहते थे बड़ी ग्राहदिल हैं, तुमपर कभी विपत्ति आए तो नि सकोच चले जाना ।

“तुम यही क्यों नहीं चले आते,” उस सुंदर नवयुवक के सम्मुख अपनी दाह-दिली का सीध परिचय देने डॉक्टरनी व्याकुल हो उठी ।

‘इतना बड़ा बगला है,’ उसने बड़े गव से दानो हाथ फैलाकर, अपने बगले का भहाता दिखाया। ‘मैं तो दिन भर अस्पताल में रहती हूँ, तुम निचला एक पूरा सेट ले सकते हो, आराम से पढ़ना, दो-तीन नौकर हैं, तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी।’ स्वच्छ बगल की छटा, मखमली दूब का आम्र-त्रण और फिर परमस्नही प्रौढा गृहस्वामिनी ने माततुल्य आग्रह न, क्षण-भर के पाहुने को सदा के लिए बांध दिया।

दूसरे ही दिन वह एक रंग उड़ा फूलदार बक्स, ढेर सारे मैले कपड़ों और पुस्तकों की सम्मिलित पोटीली लटकाए ससकोच डाक्टरनी के वरामदे में खड़ा हो गया। दुभाग्य से डाक्टरनी अस्पताल गई थी, चौकीदार ने उसे चीरकर धर दिया, ‘जिसे देखो वही साला पोटीली लटकाए बगल पर खड़ा है। यह कोई सदर अस्पताल है क्या? जाओ मरीज लेकर वही जाओ।’ इतन मही डाक्टरनी भा गई, उसने एक डाट लगाकर चौकीदार को भगा दिया और बड़े आदर यत्न से अम्मागत को भीतर ले गई।

‘दखा छेदी,’ उसने अपने सबसे चुस्त नौकर का बुलाकर कहा, ‘ये हमारे मूषी जी के बेटे हैं, अब यही रहेंगे, इन्हें किसी तरह का तकलीफ न हो, समझे, हमारे कनसलिंग रूम के बगल के दोनों कमरा में इनका सामान लगवा दो।’

और इस प्रकार, शेखर-दिन-प्रतिदिन कृतज्ञता के प्राणलेवा बलदल की गहराई में डूबने लगा। कितना ही काम क्यों न हो, डाक्टरनी उसे साथ बिठाकर खिलती। सुबह चार अण्डे, दलिया, मक्खन, डबल राटी, गिलास भरा हिसार की भस का दूध। साथ में मक्की विटैमिन की सतरंगी गोतिया। पिता के ताऊ के दामद के महा, भजवाइन डले नमकीन परांठे खाने का अम्यस्त शेखर का निरीह पेट विद्रोह कर बैठा। उसे अपच हो गया, पर डाक्टरनी के भोल में अपच की भी तो राम बाण गोलिया रहती थी। वह दा ऐसी गालिया भी खिला देती। धीरे धीरे भंडों की जर्दी गाला पर सुर्खी बनकर फैलन लगी, उदास पुतलिया की उदासी घुल गई। रहा सही बसर बाहर के नामो दर्जी न पूरी कर दी। सुरुचि से छाटे और सिलाए गए कपड़ों में शेखर का व्यक्तित्व उभर आया। उसे लेकर, कभी-कभार डाक्टरनी घूमन निकलती तो लोग कहते, ‘डाक्टरनी ने एक बड़े ही सजीले नौजवान को गाद लिया है अब अपनी सारी सम्पत्ति भी उसीके नाम लिख रही है।’ यहा तक कि आसपास के समृद्ध गृहा से तिलक के नीलामी डके भी बजन लगे। पर तब ही डॉक्टरनी गलब कर बैठो। वैसे तो यह ससार का नियम ही सा बन गया है कि रक्षक एक न एक दिन भक्षक बन हो जाता है, पर जिस तज्जी से, बिना किसी पूर्व निर्धारित याजना के ही, डाक्टरनी ने शेखर को वहाँ से दवाई अपनी क्षुधा का आस बना लिया, उसके लिए समाज प्रस्तुत नहीं था। जैसे कसाई खस्सी बकरे को यत्न से खिला पिला, एक दिन मोटी गदन पर छुरी फर ही देता

है, ऐसे ही दोरार की गदन भी मोटी होते ही नष्ट गई ।

पूर शहर में तहलका मच गया, कोई कहता, “अपेठ डाक्टरनी की मति मारी गई है । जवान छोकरे की सुटिया ही डूबो दो ।” कोई दोरार की ही दोष देता, “क्या कोई बच्चा था, जो जलथी तिलावर फुसला लिया ।” पर शहर में एक भी घर ऐसा नहीं था, जो डॉक्टरनी के एहसाना सन दबा हो, इसीसे जिस तेजी से बटु आलोचना का गगन चूमथी ज्वार उठा था, उसी तेजी से उतर भी गया ।

अपेठ डॉक्टरनी अब घटस्त से अपने जीवनान्तर पति की लिए धूमने लगी । अब वह अपने सफेद बालों के बीच सीपी मांग निकाल धाप पाव सिद्धूर बिलेरने लगी, पैरो में बिछुरे पहन लिए, यहां तक कि उसने नाक छिदवाकर हीरे की एक लॉग भी डाल ली । बड़ी कठिनाता से प्राप्त सौभाग्य दस्तु की वह पतिव्रता के कानून की एक एक हथपड़ी से बन्दी बनाकर रखना चाह रही थी । छोकरे-से पति के साथ वह सिर ढाक-ढक्कर परिचित मित्रों के अभिवादन का सलज्ज प्रत्युत्तर ही नहीं देती, अपने पति का निलज्ज परिचय भी द डालती, “इनसे मिलिए, मेरे पति दोरार कुमार ।”

मिलन वाला की समझ में नहीं आता कि उस अभाने की बधाई दें या सहानुभूति के शब्दों से उसका अभिषेक करें । डॉक्टरनी ने विवाह के पाचर्ये दिन ही हनीमून की जोर-शोर से तैयारी कर दी । जिन साडियों के शोख रंगों की उसने अपने जीवन काल में लाठी लेकर लदेड दिया था, वे उनही प्रौढावस्था में और भी शोखी से मचल उठे । अब वह लाल, पीली, नीली नई चटकीली भटकीली साडियां ले आई । भुरी पड़े गालों पर अस्वाभाविक सुर्खी का प्रलेप धोप, मा के भारी भारी मगर कानों में लटका, वह देखने वालों की दृष्टि में हास्यास्पद, किन्तु अपनी दृष्टि में स्वयं अपूर्व सुन्दरी दीखने लगी । लम्बे हनीमून के दौरान, नैनीताल, कश्मीर, शिमला, मसूरी आदि नापने के सुदीप प्रवास काल में यत्र से सवारा गया बगला किमकी सोंपा जाए, यह मुख्य समस्या थी । इसी समय छप्पर फाटकर राममण्डली टपक पड़ी । ‘के’ अपने विवाहोत्साह की वादणी के मद में खुर थी, पहले कोई किराय पर बगला उठाने का प्रसंग उठाता, तो वह चाटा बस देती, पर अब उसने उनका प्रस्ताव सहज स्वीकार कर लिया । सामान्य-से किराय पर ही आधा बगला उठ गया, पांच देखने में साक्षात् डाकिनी साकिनी सी विधवाभा की प्रतिवेशिनी बनाने में भला आपत्ति ही क्या हो सकती थी, कोई सुन्दरी पोंडशी होती, तो शायद वह दो घड़ी सोचती भी । तब से राममण्डली वहीं जमी थी । यही नहीं सबसे बड़ी हेड रामनी से तो ‘के’ का बहनापा भी था, वही पाचो में सबसे अधिक रसिक स्वभाव की थी । ‘के’ हनीमून से लौटी तो उसकी रसपूर्ण यात्रा का विवरण सुनने में हेड रामनी को अपनी बड़ी बेदार की यात्रा से अधिक आनन्द आता । पर इधर जब से किशोरी आई, वह जानबूझकर ही

के पास नहीं गई थी। किशोरी उसकी मृत छोटी बहन की पुत्री थी सखी 'के' पशु ने प्रचानक किसी हयगोले की ही भाँत उसे हेड रामनी पर फेंक और भाग। 'के' का ईर्ष्यालु स्वभाव उससे किशोरी के आगमन की बीसियों कंफियतें दिया था उसे बाँटिंग म डाल देगी, तब 'के' से बहेगी। किशोरी को तो वह बाहर मागेगा ही नहीं देती थी। पर किशोरी क्या बिना भाँके मान जाती? चौथे दिन भाँकने प्रसिया सगम को गद्ग और 'के' को अस्पताल पहुँचा, दोखर पुस्तक से पाचा मो बैठा ही था कि उसने फिर पूछा, "क्यों, माताजा चली गई?"

आगत मर जैस पहल ही सत्पर बैठा था। फिर कंसी ही तबी क्यो न हो, दोख के निरंतर बोझ से, नीम की डाल कुछ झुक गई थी। दो-तीन बार दिन्नी नीलो साडी के आमक रंग, पत्रो के बीच किशोरी की छाया को दिन घाँना बचा लेत थे, आज की लाल जयपुरी धूनर हरी घास में चमक उठी, घूमिल बद-बेबी प्रश्न बाण का स्वर भी कुछ काप गया। दोखर ने लपककर फिर दाढ़, ऐस हिलाई जैसे पक फल गिरा रहा हो!

डाल पकसे टपके आम सी ही किशोरी टपक पड़ी। क्षण भर को भी पकड़ने टपकता तो हाथ-पैर चुरमार हो जाते।

बाला चुर ने किसी 'रिप्लेक्स ऐक्शन' की ही प्रेरणा से उसे सभाल लिया। दोखर मधेय धूलधुली काया को घामने की अम्पस्त पुष्ट आजानु भुजाए निगाह। सहमकर, उसने छटपटाती किशोरी को जमीन पर छोड़ दिया। परधरा र आचानक पबड़ा गया।

दोखरमा कीजिएगा," उसके लसाट पर पसीना झलक उठा "मुझे पता नहीं 'क्षमाप उस डाल पर है।"

या कि। वह मुखरा उबधी बड़ी घुष्टता से मुस्कराई, "प्रोह, आपने क्या सोचा परस डाल का हिलाने पर आपकी दादी नीचे गिरेगी?" दोखर का चेहरा था कि रसे लाल हो उठा। "वह तो आपका भाग्य अच्छा था, नहीं तो नीम की अपमान माने पर फल थोड़े ही ना गिरता। उफ कुहनी छिल गई!" उसने जान-डाल हिसपनी मुडोल कुहनी सहलाई पर उसका प्रदर्शन व्यथ गया। प्रोढ़ा पत्नी झुझकर सहवास ने दोखर को समय से पुव ही जुलुग बना दिया था।

वे लम्बे ब आप जाइए मुझे अस्पताल जाना है," उसने आखें नीची किए बड़े "मर मे कहा।

तअ स्थोह अपनी 'के' को लाने" वह फिर हसी, "अच्छा बतलाइए तो आज 'के' ने कुल जमा दस ही अपातिया क्यो खाइ? और दिन तो पंद्रह आपकी? बेचारी, मैं रात को भी रोशनदान से देखती रहूंगी, ठीक से खाती थी। आक्षिर उसी खूटे के बल तो आप नाचते हैं।"

बिनाइए के गौर मुखमण्डल पर एक बार फिर कणचुम्बी ललाई लिप गई। दोखर

“आपने तो डाल हिलाकर पके फल-सा गिरा दिया, अब चट्टू कैसे ?” उसने बड़े भोलेपन से पूछा और पहली बार दोनों की आँखें मिली ।

शेखर के सर्वांग को सौंदर्य शिक्षा के उस दहकते अगारे न दाग दिया ।

“चलिए, सामने का गेट खुला है, मैं आपको पहुँचा दूँगा ।”

“वाह जी वाह, क्या ज़रूरी है कि आपका गेट खुला है, तो हमारा भी खुला होगा । हमारी मौसी हमें ताल में बंद करने जाती है, कहती है अतिरूप से ही सीता-हरण हुआ था । मैं तो कहूँगी, आपकी ‘के’ की भी यह सरासर नादानी है । आपको ताले में बंद न रखना उसकी मूल्यता है, लीजिए, सहारा दें तो मैं चट से डाल पकड़ लूँ ।”

शेखर ने उस उद्दण्ड बालिका का आदेश गुमसुम होकर सुना, फिर चुपचाप भीतर से एक स्टूल लाकर घर दिया ।

‘घयवाद,’ उसने साड़ी को कुछ ऊँचा किया, सुडील अरुण एडिया स्टूल पर उबकी और वह कूदकर उड़नछू हो गई ।

“माताजी से प्रणाम कहिएगा, और फिर एक बचकानी खिलखिलाहट छन-छनाकर वही खो गई ।

शेखर कुछ देर तक बुत सा खड़ा ही था कि घडघडाती ‘के’ आ गई ।

“यह क्या शेखर ! सो गए थे क्या ? कई बार फोन किया घण्टी खून-खुनाती रही, किसीने उठाया ही नहीं । मुझ अस्पताल की ऐम्बुलेंस में आना पड़ा ।”

‘के’ बुरी तरह हाफ रही थी ।

‘सारे के, मैं यहाँ बैठा पड़ता ही रहा ।”

‘कुछ है खाने को ? आतें कुलबुला रही हैं । अभी अभी एक सड़ी बच्चेदानी आपरेशन कर निकाल आई है । जा मिचला रहा है ।”

शेखर की अंगुलियों में अभी भी विशोरी की जीवन प्रस्फुटित देह-वस्त्रों का स्पश ताजा बसा था, उसने ऐसे अनाड़ी खूनी की भाँति अंगुलियों को पेंड की जेब में छिपा लिया, जैसे खूखार आनेदार को देखकर वह ताजे रक्त का एक-एक छीटा मिटा देना चाहता है ।

नाश्ता लगते ही ‘के’ भूखी शेरनी सी टूट पड़ी । बचावच भकाभक पकी-डिया, मेवे और केक हड़पकर वह एक पका सेव लेकर सोफ पर लद गई । दानो पर नीचे लटकाकर बोली, बी ए ब्रिक डालिंग, जूता खोल दो ।”

शेखर की आँखें बरबस ऊपर को उठ गईं । रोशनदान पर किसीकी स्पष्ट छाया उभरी । बड़ी विवशता से वह पत्नी के जूत खोलने झुका, नित्य के अम्यास का एक ही भटके में नहीं तोड़ा जा सकता ।

‘कल मुझे मोरखपुर जाना है शेखर’, वह बोली, “एक तयदी रईस मुर्गी

फसी है। रायजादा साहब की बहू की डिलीवरी के लिए बुलावा भ्राया है। लडका हो गया इस बार तो अशफिया ही बरगेंगी। पिछली बार ट्यूबल प्रेगनेंसी थी। मुझे जाना भी चाहिए। पिछले सात साल से बेचारी गोरखपुरी लालमिचों का लाजवाब अचार खिला रही है। वसे तुम्ह भी साथ लाने का बहुत माग्रह किया है पर उनकी छोटी लडकी इज डैम गुड लुकिंग, आई काण्ट टेक द रिस्क।” वह प्राय ही अपन युवा पति से ऐसी मनचली रसिकता कर बैठती थी।

“मुझे पढना भी है” शेखर ने गम्भीर स्वर मे कहा।

“हा, हा, इस बाग तो तुम्ह पोसिस सबमिट करनी ही है, सोचती हू कल लडके ही कार लेकर चल दू।”

दूसरे दिन सुबह चार बज ही ‘के’ निकल गई, उधर राममडली भी किसी पड पर लटके दा सौ वप के बाबाजी के दशन करने चली गई थी।

आश्वस्त होकर शेखर ने बत्ती बुझाई और सो गया। सुबह होने म घटा भर था। अचानक खाने के कमरे मे खटपट शब्द सुन, वह चौंका। हो न हो यह ‘के’ का मुह लगा पशियन बिल्ला किंग’ होगा। उसके हिस्से का नाश्ता मेच पर ही घरा था। सब प्लेट-प्याल तोड़-ताडकर रख देगा बदजात।

वह झुझलाकर उठा और खाने के कमरे की आर लपका।

“भाइए,” मुस्कराती किशोरी का कण्ठ केक के एक बड़े-से टुकड़े स भवरुद्ध था, फिर भी उसने ऐसी प्रम्ययना की, जैसे वही गह स्वामिनी हो।

“बड़ी भूख लगी थी,” वह बड़े ही प्यारे ढीठ स्वर म बोली, “सुबह आपकी ‘के’ का नाश्ता देखती रही ढेर सा सामान बचा था, अपने को रोक नहीं सकी। इधर मौसी की मण्डली की नवरात्रि चल रही है, जी मे आता है, कोटू के घाटे और उबले आलू का गोली मार दू। वाह, खूब बढ़िया खाना सात है आप लोग।”

अपनी लाल तीखी जिह्वा के छोर से उसने अपने रसीले अघर चाट, चटखारा लिया और अचार की लाल मिच को मठरी पर मसलकर मुल मे घर लिया।

“इसी अचार को लेने गई है न आपकी ‘के’ गोरखपुर ? भई वाह मान गए बादशाही अचार को।”

शेखर उस बेहया लडकी के दु हसाहस को देखकर दग था। थोड़ी ही देर मे छेनी आता होगा।

पता नहीं यह सिरफिरी क्या कर बैठे। वही किसी पागलखाने से भागकर आ गई कोई पगली-वगली तो नहीं है यह ?

“आप हैं कौन ?” मन की उधेड़वुन झुझलाहट भर प्रश्न के रूप म निकल पड़ी, तो शेखर को अपने रुखेपन पर कुछ ग्लानि भी हुई।

“आपसे मतलब ?” किशोरी एक-एक ढकी प्लेट को मोलकर दख रही

थी, सब कुछ चाट चुकी थी वह, एक तश्तरी में बड़ी-सी टिकिया मक्खन की धरी थी, उसने लपककर वही मुख में धर ली।

“देखिए,” शेखर गिड़ागड़ाया, पता नहीं आप कौन हैं, पर इधर सब नौकर आत-हागे, आपका मरे साथ अकली देख लग तो अच्छी बात नहीं होगी।”

क्या अच्छी बात नहीं होगी भला? आप बुरा मानें या भला जब तक आपकी ‘के’ नहीं आती हम जरूर आएं, अब चलो, घ घवाह।’

और वह उठत ही किसी चतुर दस्तुक या-सी मज पर धरी के की फिल्मी पत्रिकाएं बगल में झपट्टा मार देवा ल गई, वाह, खूब माल हाथ लगा है आज, दिन भर मजे में कटेगा। मोती क यहां तो सिवाय धम ध ध के कुछ पढ़ने ही का नहीं जुटता।’ कहती बहती वह फुर्सी से आगन पारकर अपना सतु टहना का पकड़ अपनी सोमा में कूद गई।

शेखर ने चोरी तो देखी थी, पर ऐसी सीनाजारी देखन का यह पहला अवसर था। उस अपरिचितता के उत्पात से बचन का एक ही उपाय था। दिन भर वह अपने मित्र रमण के साथ बाडिंग में बिता लगा, वह देगा घर पर पढ़ाई ठोक नहीं जाती। एक दो दिन न हा मेस’ का ही खाना सहा, फिर तो ‘के’ आ ही जाएगा। रात का देर से लोटेगा और कमरा भीतर से बंद कर सो जाएगा, फिर क्या छत से टपकगी छावरा?

अपनी योजना से परम से तुष्ट हो वह बग में कपड़े ठूस ही रहा था कि एक हल्के धमाके से चौका। जिस छलन को सहस्र योजनाएं बनाई जा रही थी, वह छलनामयी स्वयं मुस्कराता सशरीर उपास्थित हो गई।

ओह मुझसे डरकर भाग जा रहे हैं क्या? लपककर उस दु साहसनी ने बैग छीन लिया। देखू क्या क्या लिए जा रहे हैं, अपना ‘के’ का फाटा बाटा भी घरा है या नहीं?’ वह एक एक बाजू नीचे फकन लगी।

‘छि छि, आपकी ‘के’ भूटल्ली, देखन ही देखने की है हथिनी। यह कोई स्वेटर है भला? हमारा बुना स्वेटर स्वेटर देखिए, तो बस देखत हो रहे जाएंगे। हमारे जोजा जा कहते हैं, केशी, तुम से मला तो कोई बना हो नहीं सकता।’

‘देखिए, इन सब बातों की सुनन का मुझ शौक नहीं है,’ शेखर अब कुछ कुछ मुखर हो उठा था।

अचानक ठक् से एक घीमी पदचाप से, दानों में एक साथ धोककर द्वार की मार देखा। एक मोटा-सा बिल्ला मूछ चाटता निकल गया, तो विशारी खार-हस पड़ी, वाह! पतित पतत्रे विचालित पत्र, गीतगाविदम् पढ़ा है आपन? आप भला क्या पढ़ेंगे। असली भग्न के साहब हैं। हम तब मई सस्वृत के दास्त्री जी की बिटिया हैं।”

‘देखिए आप शास्त्री की बिटिया हो या महामहापाध्याय की ।’

“अरे बाप रे,” दोनों परो की पालथी मार, बाहो को घेरे म बाध किशारी कुर्सी पर ही झूला सा झूलने लगी, ‘पेट म दात भी हूँ साहब के ।’

‘आप जाएंगी या नहीं,’ शेखर अब बोखला गया, ‘पता नहीं नीकर कब घा टपके और ‘के’ स क्या का क्या कह दें ।’

‘छि, कसा नीच मन है आपका ।’ वह अब बड़े व्यग्र से मुस्कराकर उठ गई, ‘आपने क्या सोचा, आपसे प्रेम करने आई थी मैं ? सोचा था मोती का दल पांच बजे लौटेगा तब तक दो घड़ी आपसे बनियाकर जी बहला आऊंगी—खैर, फिर आऊंगी—अब आपका छेदी आए तो जरा अपनी मोटी बुद्धि का चाला उतार खूटी पर टांग दीजिएगा । छुट्टी दे दीजिएगा नसे, कहिएगा, सिनेमा दल आए—समझे ?’ उसने अपनी भुवनमोहिनी हसी का बाण तावकर छोड़ दिया ।

अचूक निशाने स बिधा शखर का हृदय कपोत घरा पर फड़फड़ा गया ।

शेखर तो क्या ससार का सयमी स सयमी पुरुष भी होता, तो वह भी उस दिन छेदी की सदा के लिए छुट्टी कर देता । चषल, अनजान सुदरी किशोरी न उसका हाथ धामते ही, उस मोर, कापुरुष की एक एक सिरा म अनोखा दु साहस भर दिया । वह अब भाग की लपेटा म कूद सकता था, भाधी और तूफान से लड़ सकता था । कुछ ही अमूल्य क्षणों न ‘के’ का अस्तित्व सदा के लिए मिटा दिया था । उसके दायें बायें, दामिनी सो दमवती बिल भर की छोकरी उसे अंगुलियों पर नचा रही थी । दोनों का अभूतपूर्व दु साहस जगली हिरन सा कुलाचे भरन लगा था । छेदी की पदचाप सुनते ही किशारी जगली खरगोश की तेजी स चौकनी हो, वारड्रोंब क पीछे दुबक जाती । मोती के दल को उसने स्वयं बड़े प्रपच से, मिर्जापुर की विध्यवासिनी के दशन को भेज दिया था । उधर ‘के’ का टुककाल आया था कि रायजादा की बहू का झूठे दद उठे थ, पर कभी भी सच्चे दद उठ सकते थे, इसीसे उसे आठ दस दिन रक्ना पड़ेगा ।

सुनते ही किशारी, शेखर के गले म हाथ डालकर झूल पड़ी थी, “हाय ईश्वर करे रायजादा का नाती, मा के गभ से दाढी मूछें उगाकर जमे ।” पर रायजादा के नाती को युगल प्रमियों की इस प्रणय किलोल म सहयोग देने का धय नहीं रहा और अभागा उसी रात को जम ल बठा । पति से इतना लम्बा बिछोह ‘क’ को असह्य हो उठा था । आज तक वह इतन लम्बे धरसे के लिए शखर से कभी विलग नहीं हुई थी । दूसरे ही दिन तगड़ी फीस, रेशमी साडी, शेखर के सूट का कपडा आदि बाध-बूध वह चल पड़ी । वह पति का बिना तार किए ही छका देने की योजना बना चुकी थी ।

उधर प्रमोद्वय के की अनुपस्थिति का महोत्सव मनाते म आकण्ठ डूबे थे । अब छेदी को भी मुट्टिया गम कर अपने साथ मिला लिया गया था । अभी भी कमरे की परिधि पारकर, दिन म कही जानका साहस दोनों नहीं सजो पाए थ,

पर फिर भी एक रात को दोनों सिनेमा का सेकण्ड शो देखने निकल पड़े। नियति मह छिपाकर हस रही थी।

उसी मनुष्य रात को ‘के’ रात की गाड़ी से ठीक ग्यारह बजे रिक्शा लेकर आ घमकी। गोन कमरे की बत्ती जल रही थी। निश्चय ही उसका अध्ययनरत पति द्वार की ओर पीठ किए पुस्तकों में डूबा होगा। धीमे से जाकर आखें मंद लेगी वह। ऐसे ही खिलवाड़ तो उसे पसंद थे। पर बेचारी ‘के’। आखें मंदती किसकी। बड़ा तो शेखर की कुर्सी पर ठाठ से बैठा छेदी नींदी फूक रहा था।

“बेहया बमीना कही का, यहा कैसे आ गया?” छेदी अचानक साक्षात शव वाहना घामुण्डा का तमतमाया चेहरा देखकर, थर थर कांपने लगा।

“सरकार मेरा कुछ बसूर नहीं है,” ‘के’ के बह पैंर पकड़कर लोट गया। ‘पहले तो दीवार फादकर आती रही, जब से सत्तनिया गई हैं खुले खजाने आपके माल पर डाका डाल रही है हमारा खून खोलता रहता है, पर क्या करें नौकर आदमी हैं—साहब का हुक्म कैसे टालें आनदाता?”

घूत नापित बिषघर अब कुण्डली खोल, पूरा फन फैसा चुका था।

‘के’ हक्की बक्की रह गई। पर अपनी अनभिज्ञता इस घूत के सम्मुख बड़े छलबल से ही छिपानी होगी।

“साहब कहा है?” उसने स्वाभाविक स्वर में पूछा।

“दूनों जनी सलीमा गए हैं, सरकार घण्टा-भर में लौटते ही होंगे।”

कुचाली छेदी की आखें मिया-बीबी की सम्भावित दशनीय कुत्ती देखने की ललक से काच की सतरंगी गोलिए-सी चमक उठी। उसका क्या? अब भगतेगे दोनों—उसे मिली रकम तो अब कोई छीन नहीं सकता—उसने मन ही मन कहा। ‘के’ चौकनी हो गई। गरज तरज आसू चीख पुकार से बात कुछ बनेगी नहीं। क्या पता शेखर उसे छोड़-छाड़ इसी दीवार फादने वाली के पीछे चल पड़े। पर यह भी कौन? बिना छेदी को मिलाए बात बनेगी नहीं।

छेदी की मुट्ठिया एक बार फिर गम हुईं। सब कुछ सुनकर ‘के’ सन रह गई। क्षण भर की बुढ़िया का पीला पड़ गया चेहरा देख छेदी को तरस आ गया।

“मैं स्टेशन जा रही हूँ, छेदी” ‘के’ ने रूमाल से नाक पोछकर कहा “रात-भर वहीं रहूंगी। शेखर से कहना मेरा गोरखपुर में ट्रकवाला आया था कि मैं कल सुबह पहुँच रही हूँ। अगर तुमने उसे मेरे आज यहा आने के बारे में कुछ कहा, तो फिर तुम मुझे जानते हो।”

छेदी क्या उसे नहीं जानता था। फूल सी सुक़्तमारी कितनी ही किशोरियों को लुट-पाट, उनके पाप की गठरियों का कचरा धोते क्या नहीं देन चुका है इस हत्यारिन को।

दूसरे दिन सुबह गेवर कार लेकर स्टेशन गया। ‘के’ ने नित्य की भाँति कार

मैं बैठते ही अपना माथा उसके वयम-स्वयं पर टिका दिया, वह कुछ तन-मा गया तो 'के' को लगा वह वहीं पर फट फटकर रो पड़ेगी। पर वह जानती थी कि अब उसे उस्तरे की धार पर चलना है। "मेरे गए में तुम्हें कुछ तकलीफ तो नहीं हुई शोखर?" उसका स्वर चार तार की चाशनी में डूबा था।

"नहीं।"

पति के सक्षिप्त रुखे स्वर के चाटे ने भी उसे हताग नहीं किया।

"रायजोदा के नाते" हुआ है तुम्हारे लिए बहुत बढ़िया सूट का कपड़ा भेजा है।"

"अच्छा।" व्यंग्य से तिरछे लिचे अक्षर पर शेखर की कुशलता से तरांगी गई पतली मूँछें भी तिरछी हो गईं।

प्रेमतरंगाकुला 'के' ने बड़े प्रयास से अपने को रोका अगणित कर्पण छवि को झलान कर रही उसके पति की छवि उसके गाल से बित्ते-भर की दूरी पर थी। और दिन की बात होती तो वह उसे उस भीड़-भरे चौराहे ही में झूमकर घूम लेती। पर मन मारकर उसने अपने को रोक लिया। घर पहुंचते ही छेदी स्वागत को खड़ा था।

"क्यों छेदी ठीक हो? साहब को खूब धाराम दिया ना?" अपने सफल अभिनय पर 'के' को स्वयं ही गव हुआ।

"हा सरकार अपनी जान तो खब धाराम दिए हैं" कपटी काकदण्टि से वह अपने साहब की ओर देखकर मुस्कराया।

पर साहब मूमसुम था।

दोनों जाम लेने एक साथ बैठे। बठोर मानसिक आघात भी 'के' की भूल नहीं हर पाया था। उसने कचर-कचर पकौडिया खाईं घाघी डवल रोटी साफ की भुने बादाम दो पोच अण्डे भकौम सेब लेकर मोफे पर लद गईं। नित्य के अम्पास से उसने अपनी मैयर के मोटे तूम्बे सी टांगें नीचे लटका दीं "बी ए प्रिक् डॉनिंग जूता खोल दो हमारा।"

पर नेखर अब तक उल्टे पड़े अबग बीटस की भांति अचानक सीधा होकर भनाने लगा था "हमसे नहीं खुनेगा छेनी को बुला लो।"

रोशनदान की आम्बो की जादुई छड़ी, उसे उठा बिठा रही थी यह सेब की श्रोत से चतुरा 'के' ने भी देख लिया।

'सॉरी नेखर' उसका गुला भर आया और वह स्वयं जूता खोलने लगी।

रात को नेखर भूमे शेर की भांति चक्कर लगा रहा था। किशोरी की एक ही दिन की गैरहाजिरी ने उसे अब विलिप्त सा कर दिया था।

"नेयर डियर" अचानक 'के' को अपने पास खड़ी देख वह झट्ला गया।

'क्या है?' उसने डपटकर पूछा।

“आम बड़ी सतनी आई थी, शेखर, विध्यवासिनी का प्रसाद देने, साथ में उसकी एक प्यारी-सी भतीजी भी थी।”

उस प्यारी के नामोल्लेख मात्र से ही शेखर की आँखें चमकने लगी हैं, यह भी ‘के’ ने देख लिया।

“मैं उन सबको कल शाम चाय पर बुलाया है। पाचो तो केवल फलाहार लेंगे पर उस प्यारी बच्ची से मैंने पूछा उसे क्या पसंद है—बोली, कुल्फी। सब ए चाइल्ड। तुम तो कुल्फी छूते नहीं, खैर, तुम्हारे लिए कुछ और बनवा लेंगे।”

शेखर का हृदय गदगद हो गया। चलो आज नहीं तो कल ही सही। किशोरी की एक भलक तो मिलेगी।

दूसरे दिन की संध्या के आयोजन में कहीं भी कोई गड़बड़ नहीं थी। पलाहारी सतनिया कभी कचारी अन्नार पर दात मारती, कभी रामगढ़ के सेबों पर। कभी गुच्छे के अंगूर चटकर ‘हरिओम्’, ‘हरिओम्’ कर अंगूरी डकारों की मशीनगन-सा चला देती।

किशोरी से शेखर का परिचय स्वयं ‘के’ ने करवाया, “शेखर, इससे मिलो, ससार की सवश्रेष्ठ सुंदरी।”

ससार की सवश्रेष्ठ सुंदरी से शेखर का कितना प्रगाढ़ परिचय था, वह खूबसूरत भला क्या जानेगी? शेखर मन ही मन मुस्कराया।

किशोरी कोने में गड़ी कुल्फी पर कुल्फी दागे जा रही थी।

“इतना मत खा केशी, बीमार पड़ जाओगी,” हेड सतनी अब तक अपने रामडोल से पेट में रामगढ़ी सेबों का एक छोटा मोटा ओचड़ बना चुकी थी।

“टोकती क्यों हो बीमार पड़ भी गई तो मैं तो हूँ,” अपनी सुमेरु पवत सी छातियों को ठोकती ‘के’ आगे बढ़ आई।

“जानती हूँ, जानती हूँ भैन,” किशोरी की मौसी ने अपनी सोने की दातखुदी से दात खादकर कहा, “तुम्हीं तो हम पाचो को प्राणदान दिया था।”

खा पीकर पाचा विदा हुई, तो शेखर मन मरा सा कमरे में बैठा रहा। बार बार वह तपित चातक सा रोशनदान को ही देख रहा था—पर अटारी सूनी थी और वह जनता था कि आज सूनी ही रहगी।

बड़ी देर तक बैठा पढ़ता रहा। ‘के’ दो तीन बार बुलाने भी आई, पर निराश होकर लौट गई।

एक अजीब बचनी से शेखर का दम सा घुटने लगा।

वह उठ ही रहा था कि किमीने द्वार मड़मड़ाया ‘डॉक्टरनी भैन, डॉक्टरनी भैन,’ भूतनी सी वाल फँलाए बड़ी, मझली और छोटी सतनी खड़ी थी।

‘अरे बेटा तनिक उठा दे उसे, मेरी किशोरी ऐंठी जा रही है, एक दा दस्त पाए हूँ और दो उल्टिया—हाय, इमके ताऊ को मैं क्या मुह दिताऊंगी।”

हेड सतनी का रोना कलपना सुन, ड्रेसिंगगाउन डाल, चप्पल फटफटाती 'के' बाहर भा गई सब सुनते ही आसा लटका वह तेजी से सीढ़िया चढ़ गई। सच-मुच ही किशोरी के सुंदर चेहरे पर स्याही फुव गई थी।

"किशोरी आखें खोल बिट्टी" सन्तनी ने उसकी ठुड़ी पकड़कर हिलाई। किशोरी ने बड़ी चेष्टा से आखें खोली घोर द्वार पर सड़े अपने नवीन प्रेमी के चेहरे पर नग-सी गड़ा दी।

"शेखर" वह बुदबुदाई।

शेखर निभय होकर बड़ आया, पलंग की पाटी पर बैठ उसने किशोरी की हिमशीतल हथेली धामकर गाल से सटा ली।

पाचो सन्तनिया की आखें आश्चर्य से बाहर निकल आईं। 'के' जेल की कठोर जेलर सी सिरहाने खड़ी थी।

किशोरी के प्राण जैसे शेखर की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते देखते पुतलिया उलट गई।

पाचो सन्तनिया अपना ज्ञान, योग और यम नचिकेता सबाद भूल, सामान्य मानवीयो की भाति छातियों पर कुहल्यड चलाती पछाहें खाने लगी "हाय मेरी बच्ची, तूने अभी सुख ही क्या देखा, तू कहा गई री।"

"देखिए" 'के' न बड़ी सतनी का कंधा पकड़कर हिलाया, "होश म आओ बहन, वैसे तो इसे कौलरा था, पर सुबह होने से पहले ही अर्धी उठा दीजिए, उस हरामजादी पुलिस का कुछ ठीक नहीं बेकार मे परेशान करेगी।"

ससार त्यागी स तनिया पुलिस से बेहद घबड़ाती थी।

सोने की सी काया को अर्धी मे कस कसाकर अस्पताल के कमचारी राम के नाम की महिमा से आकाश गुजात चल दिए। पीछे पीछे सिर झुकाए शेखर को भी जाते 'के' ने देख लिया। वह अपन कमरे मे अस्पताल के लिए तैयार होने लगी। एक आध भीत क्या डाक्टरनी को अस्पताल जाने से रोक लेती? वहां तो ऐसी आकस्मिक मृत्यु नित्य का दाल भात थी।

एकाएक किसी धिनौने कंचुए सा रेंगता छेदी द्वार पकड़कर लड़ा हो गया।

"हमारी बख्शोश सरकार—जान पर खेलकर कुरूपी बनाई—कहीं कोई पकड़ लेता, तो आपको कोई डर नहीं था, हमी फासी पर लटकते।"

"हा हा मिलेगी, शोर मत कर—शेखर आता होगा।" 'के' झुककर पीता बाध रही थी कि उसे लगा उसकी गदन पर किसीकी कड़ी नजर का चाबुक पड़ रहा है। चौंकर देखा, तो शेखर की लाल अगारे-सी आखें दहक रही थी।

'अरे शेखर तुम इमशान नहीं गए क्या?' उसने पूछा।

"नहीं," वह बीभत्स ढंग से हसा 'तुम्ह वहां पहुंचाने आया हू।"

सुनते ही छेदी खिड़की मूदकर हवा हो गया।

[illegible]

चीलगाडी

काश, मैं अपने विदेशी अतिथिदल के साथ असम के उस गहन वन में आयोजित, नागा सहभोज में न गई होती ! सुपारी के पेड़ और पानों के झुरमुट के बीच एक विराट अग्निस्तूप की लाल लाल लपटें आकाश को चूम रही थीं। विचित्र परिधान में भगा को मोड़ता मरोड़ता एक नागा तरुण, हमारे स्वागत में अपनी रणसिंही को आकाश की ओर उठा उठाकर फूंकने लगा था, "तू तू तू तू ।"

उस रणसिंही की मीठी स्वर सहरी ने मुझे फिर बेचैन कर दिया।

एक बार मेरे जीवन में ऐसी ही रणसिंही और बजी थी कानो को फाड़कर झूलते, भैंस के सींगों के काले कुण्डल झुलाता अवधूत जागी समरनाथ बाजी, अपने गाजे से आरक्त नयन आकाश को उठा, टेढ़ी रणसिंही को बाकेय मुद्रा में साथ उध्वमुखी फूक दे उठा था, 'तू तू तू तू ।' आज उसी विस्मृत फूक की स्वर सहरी ने कुमायू के गगनागन को पारकर, इस अपरिचित असम के आकाश को घेर लिया है। जिन स्मृतियों को मैंने अमानवीय दुःसाहस से कुचल दिया था, वे आज फिर जीवन्त हो उठी हैं।

लेडी ब्रैण्डन को असम के मूणा रेशम का पूरा थान भेंट किया गया है। वे उसे बार बार गालों से लगा, उसकी स्निग्धता में आकण्ठ डूबी जा रही हैं। विदेशी राजदूत की पत्नी के भारत दशन यात्रादल में मुझे सम्मिलित कर, विशिष्ट सम्मान दिया गया है—यह मैं जानती हूँ। इस समय मुझे क्या क्या कहना चाहिए, वह भी मुझे ज्ञात है। असम के इस मूणा रेशम की विशिष्टता, रणसिंही के स्वर संगीत की व्याख्या, नागा मुखिया के गले में झलती मण्ड माला की मौलिकता—इन नाना विषयों पर मैं घंटों घारा प्रवाह बोल सकती हूँ किन्तु रणसिंही बीच बीच में बजती जा रही है। तरुण वादक का नया शरीर प्राण की लपटों में ताम्रवर्णी लग रहा है वह बार बार मुझे ही देख रहा है जैसे मुझे चुनौती दे रहा हो 'देखो न भूले बिसरे चेहरे बिसरना क्या इतना आसान है?'

बड़ी अम्मा देखलला, बाबूजी कुन्दन और गैरिक वसनधारी स्वामी आत्मान द सब जस हाथ बाँधे मण्डवाकार इस अग्निस्तूप की परिचर्या करने लगे हैं। अहमोड़ा के गिरजे के भीठे घटे, देवदार के घनद्वारा सटकरात बार बार गुजर रहे हैं। मिशन स्कूल की जाती, हसती खिलखिलाती, सीढ़ी बजाती ईसाई लड़की

की लम्बी कतार पूरी सड़क घेर रही है और समरनाथ बाजी की उसी करुण स्वर-लहरी के साथ नेपाली कुलिया के कंधे पर हुमकती मेरी डोली, मायके की देहरी, कल्पनालोक में एक बार फिर साध रही है। घूघट की यवनिका के बीच बार-बार नय के लटकन का दृष्टि व्याघात पड़ रहा था, फिर भी मुझे चाची के गोरे गोल हाथ पर बधा पीसे लास सूत का कंकण स्पष्ट दीख रहा था। बाबूजी की तीखी नाक पर रोली पर चिपकाए गए अक्षत बिखर गए थे उन्हें कंधे के लाल दुशाले से पोछते, वे दाढ़िम के पेड़ के नीचे खड़े एकटक मेरी डोली को देख रहे थे। शायद पहली बार उन्हें अपनी मातृहीन पुत्री पर दया आ रही थी। उन्हींके पास खड़ा कुंदन, अपने अस्लम खस्सम कोट में बेहद धुबला लग रहा था। उदास, भयत्रस्त आँखों से, वह तेजी से झोझल होती डाडी को देखकर, एकाएक रो पड़ा था। मातहीन भाई के उस रुदन की सिसकिया आज फिर जैसे किसी टेपरिकाड पर बजने लगी हैं।

मेरा क्यादान चाची ने ही किया था, विमाता अपने सत्रह दिन के शिशु को लेकर मायके चली गई थी। सहसा किस बात को लेकर उनकी बाबूजी से ठग गई, कोई भी नहीं जान पाया। वैसे उन्हें मेरी अत्येष्टिक्रिया देखकर सतोष ही होता। सप्तपदी के समय, मेरे पति को खासी का ऐसा विकट दौरा पड़ गया था कि क्षण भर को बाबूजी का चेहरा भी पीला पड़ गया। 'कल ही तो पी० पी० लगी है,' वर पक्ष की फुसफुसाहट मेरे कानों में गम दीक्षा उड़ेल गई थी। पी० पी० किस जानलेवा राजरोग में लगता है, यह मैं भी जानती थी। पी० पी० लगने की पीड़ा से कराहती मृत्युपथगामिनी रुग्णा मा के चेहरे को क्या मैं भूल सकती थी।

विमाता के पडयंत्र ने ही मुझे दुर्भाग्य का द्वार खटकाने भेज दिया था फिर वे स्वयं क्यों कानी काट गई? ससार में ऐसे भी बहुत से व्यक्ति मिलते हैं, जो बकरे की बलि नहीं देव सकते, किंतु उसका मांस मज्जा चिचोड़कर खाने में उन्हें बड़ा आनंद आता है। बाबूजी ने शायद पहले उस रिश्ते में कुछ आपत्ति की थी पर मेरे श्वसुर मेरी विमाता के भामा लगते थे, इसीसे बाबूजी की दाल गल नहीं पाई।

मेरे श्वसुर के वैभव का भ्रत नहीं था। यह ठीक था कि मेरी दो विधवा जिठानिया और एक विधवा ननद मेरी ससुराल की स्थायी सदस्याएँ थी, किन्तु उस बीस कमरों के विराट महल में तीन क्या तीस आश्रिताएँ भी रहती तो भी मेरा उनसे टकराने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। सास नहीं थी मेरे पति की विधवा ताई ने ही उन्हें पाला था। मेरे श्वसुर की अनुपस्थिति में वे ही घर की देखभाल करती थी। दिन ढूँं मेरी बाराठ नैनीताल पहुँची थी। भारी

जामदानी, सहने और दुहरे पिछोड़े ने भार से दुहरी होती मैं, जिसके हाथ का सहारा लेकर उतरी उसका गौर वण देखकर क्षण भर को सशय में पड़ गई। मैंने तो सुना था मेरे पति वाले भुजंग हैं, स्वसुर कुल के उसी धन्यवती वाले रंग की मिटाने के लिए तो मेरा ब्राह्मण हुआ था।

"आज तक कुल और समृद्धि देखकर बहूए लाया जोसीजी!" मेरे स्वसुर ने बाबूजी से कहा था 'इसीमें घर का नैन-नका चौपट हो गया। अब वे सोचा, भाड में जाए समृद्धि खाएँ तो बहू लाकर कुदन-से नाती-नतनियाँ जुटाऊंगा, चाहे बहू गात्र की हो क्या न हो पर हो लाओ म एक।" सचमुच ही अपनी दोनों जिठानियाँ और ननदों को देखकर मैं भय से स्तब्ध रह गई थी। क्या चेहरा था बड़ी जिठानी का बाला से भरा सङ्कुचित सलाट घट्टर की घसी कर आखें घाहर की निक्के विकराल यजदंत और एकदम मुड़ा मिर। दूसरी जिठानी भी उहींगी टक्कर की थी, हरिद्वार से वे भी बड़ी के साथ हाथ ही में सिर मुड़ाकर लौटी थी। वैद्यव्य से दोनों का चेहरा और भी भयानक लगने लगा था। बड़ी जिठानी के कोई भी गतान नहीं थी। दूसरी के एक राक्षसावृति भ्रमण पुत्र था उसे वे चौरीस घंटे गोदी में टांगे रहती पन्द्रह वर्ष के उम्र विचित्र जीव की आखें किसी भूले बय पत्र की सी थी। कभी कभी वह भाव की पुतलियों को लटटू सा घुमाता मेरी और देखकर ही ही कर हस देता और अपने हण्डे सा भीम मस्तक हिलाने लगता। मैं भय से कांप उठनी। बड़ी ननद कलकत्ता के एक समद्व कुमाउनी परिवार में ब्याही थी बगाल के सुगैय प्रवास में उनके चेहरे की रही सही कानि भी छीन ली थी। अपने दो बाले बच्चा की और भी बाली आया के साथ वे एक दिन मुझे घरकर बैठी डोलक पर मेरे द्विराग मन के गाने से मेरे मायके की दुगति गाया गाती मेरी दोनों जिठानियों को पुलकित कर रही थी, "बनी की नदी की ले गया मुसल्ला, मुहल्ले में शोर मचा रे!" मेरी दोनों जिठानियाँ, मेरी दादी के ही मुसल्ले के साथ भाग जाने से सन्तुष्ट नहीं थी ये तालियाँ बजाती मेरी अम्मा चाची, नानी सबको चारी बारी मुसल्लो के साथ भगाती हसी की लहर से कमरा गुंजा रही थी कि सहसा बड़ी सुपुरुष, हमारे बीच आकर खड़ा हो गया, जिसने मुझे बस से उतारा था।

"मैं आपका देवर हूँ भाभीजी। देवता हूँ सुन्नी भाभी को अशोक बाटिका की वाली राक्षमिया ने घेर ही लिया। इनमें भी एक त्रिजटा है, भाभी, उही के चरण गहो, समझी?"

आसपास के बाले श्रीहीन चेहरे के बीच बड़ी अम्मा के हसमुख चेहरे को मैंने पहली बार ठीक से देखा। उन उदार आँखों से मैंने जाने क्या था कि मेरा माया स्वयं नष्ट हो गया।

“आग लगे, बज्जर पड़े इन देबूलला पर।” मेरी गजद तो जिठानी, बनावटी क्रोध के तेवर चढ़ाकर बोली, ‘जहा हम औरतो को बँठी देखा, वही घुस आए, हसी ठिठोली की भी तो एक उम्र होती है लला, अब हमारी तुम्हारी क्या वह उम्र रह गई है ? पर चलो घर में पहली बार सुंदरी बहू आई है, तुम्हारे भी सात खून माफ करती हूँ।”

देबूलला बड़ी भ्रम्मा के भतीजे थे, हाल ही में उनकी बदली भी नैनीताल को हो गई थी, इसीसे अपनी बुआ के साथ रहने लगे थे। विवाह का भण्डार उन्हीं के पास था और मेरी दोनों जिठानिया बक्त बेवक्त उन्हींसे उलझी रहती थी।

“ए हा, लला, चाची दे दो, नारियल निकालने है।” बड़ी जिठानी, देबूलला के चीड़े के पकड़कर हिला देती।

“नहीं, बाबा,” देबूलला पान की पीक मुख में गुलगुलात, ठिठाली की रसपूण पिचकारी छोड़ देते। राम भजी, तुम विधवा भाभियों की नीयत बिगड़ते क्या देर लगती है। गई नारियल निकालन और चट से चार लड्डू मुह में धर लिए।”

“हाय राम, मैं मर गई। सुनती है, मझली, आज इनके लिए एकादशी के दिन हम अपना घरम भ्रष्ट करेंगी, भनाज के लड्डू चुराकर।”

बलखाती दोनों जिठानिया, देबूलला पर अकारण ही ढ़लक पड़ती। उन दोनों का मुग्धा किशोरियों का सा सस्ता अभिनय देखकर मुझे कभी बड़ी भुझलाहट होती, पर कहती किससे ? पति अपने कमर में बंद रहत, मेरे स्वसुर प्राय ही अपने ठेको के प्रसंग में तिब्बत और ताक्लाकोट की ओर उतर जाते। मुझे बड़ी भ्रम्मा के कमरे में बैठकर, हलाहल छलकते ताल को देखना बड़ा अच्छा लगता। उस हवादार कमरे में, सबदा एक भद्रभुत शांत वातावरण छाया रहता। कमरे की दीवारें असंख्य देवी देवताओं की तसवीरों से भरी रहती, उन्हीं के बीच टंगी रहती बड़े बाबू की एक आदमकद तसवीर। बंद गले के कोट, गोल टोपी और धनी मूँछों वाले उस रोबदार व्यक्ति का, एक एक नक्शा मेरे पति से मिलता था। उनके जीवन काल में घर की बहूए ठोक पीटकर बदसूरत ही छाटी जाती थी।

“सुंदरी बहुआ पर कम विश्वास था उन्हें, वे आज होत तो तुम इस घर में न आ पाती”, मझली जिठानी ने मुझसे हस हसकर कहा था। पर फिर बड़ी भ्रम्मा इस घर में कैसे आ गई ? क्या सुंदरी बड़ी भ्रम्मा पर भी बड़े बाबू ने विश्वास नहीं किया ? बड़ी भ्रम्मा का चिकना चेहरा, किसी विदेशी नन के निप्याप चेहरे की ही भांति सुंदर था। मैंने उन्हें कभी झुल्लाते नहीं देखा। उनके पास बैठना मुझे बड़ा अच्छा लगता था, पर बैठ ही कहा पाती थी। पल भर में ही चिड़चिड़े पति चीखने लगते “कहा गई हो ? अगूर का रस अब क्या खाक पिऊंगा ? तुम

क्या कर रही थीं बड़ी अम्मा के विधवाश्रम में ? क्या तुम्हें भी उसकी सदस्या बनने का शौक चरिया है ?" और मैं उस निदयी व्यक्ति के निमग्न व्यग्र से तिल-मिला जाती। इधर नियमित रूप से पी० पी० लगने से उनकी तोड़ निकल आई थी। कभी कभी ठंडी हवा लगने के भय से वे काना पर मोटा मफलर लपेट लेते तो मुझे लगता बड़ी अम्मा के कमरे में टंग तैलचित्र से, बड़े बाबू उतर आए हैं। कभी कभी उनके लाड का अन्त नहीं रहता। कहते, "चटपट तयार हो जाओ, सिनेमा देखने चलेंगे।" लाल बेलोर की खरीदार वर्दी में, मेरे श्वसुर के भूपानी कुली, मेरी दादी को हवा में उड़ा ले जाते, पीछे पीछे अपने चेस्टनट घोड़े में, गरम कपड़ों के शिरहबरस्तर में हँसे चले आते मेरे पति। सिनेमा घर में हमारे बाक्स के सम्मुख मेरे पति के देशी विदेशी मित्रों की भीड़ लग जाती। कितनी ही रानी महारानियों से मुझे हाथ मिलाना पड़ता, सब मेरे पति का मुँह सी रूपवती परनी पाने के लिए बघाईया देते, तो मैं लज्जा से गड़ जाती। धर्मजी सिनेमा की उत्तेजना से कभी कभी मेरे पति को बड़ी खासी का बिकट दौरा पड़ जाता और हम लौटना पड़ता। उनकी इस गिरती हालत का समाचार सुनकर, बाबूजी भी भागते चले आए थे। उह दखकर, क्षण भर का बाबूजी के गौर मुखमण्डल पर विषाद की झुर्रियां उभर आई थीं। पश्चात्ताप से उनका चेहरा कुछ क्षणों को विकृत हो उठा था, पर दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने को सयत कर मुझे आश्वासन दिया था, सब मगल होगा छाटी, मैं जाते ही महाकाल के मंदिर में दामाद के लिए मत्स्यजय का अमृतजाप करूंगा। किंतु बाबूजी का अमृतजाप भी उनकी मत्स्य को नहीं जीत पाया।

कहते हैं कि यक्ष्मा के रोगी को, अतः समय तक आन बना रहता है। मेरे पति की मृत्यु भी बोलत बोलते हुई थी, 'मेरी घड़ी बहा है ?' उन्होंने चीखकर पूछा था और उसी चीख के साथ उनकी आख की पुतलिया अचल हो गई थी। मैं भय से सहमी उनके सिरहाने खड़ी हो रही गई थी। बड़ी अम्मा की दबी सिसकिया, दोनों जिठानियों का सटीक विलाप, सब सुनकर भी मैं नहीं रो पाई। उस कठोर, निमग्न व्यक्ति के साथ बिताए गए सात महोत्सवों की अवधि में मुझे एक भी ऐसा प्रणय प्रसंग स्मरण नहीं आ रहा था, जिसका आधार लेकर मैं बिलस सकती।

घर के अग्र्य पुरुषों का आना असम्भव था, उह खबर भेजने में ही तीन दिन लग जाते। फिर भलकनदा की जिस रस्सी के पुल से होकर डाक का हरकारा जाता था, वह भी कुछ दिनों से बंद था। देबूलला ही कर्ता बने। कमी श्मशानघाट की यात्रा के लिए चाय चीनी जुटा रहे थे, वभी भर्षी में बड़ी मेरे पति की लम्बी देह की निरर्थक परित्रया कर रहे थे। मैं सोच रही थी, कितना स्वार्थी है मानव, श्मशानघाट की नीरस यात्रा के लिए भी चाय चीनी जुटाना वह नहीं भूलता। घर में मनोही निस्तब्धता छा गई थी। स्त्रियाँ के विलाप के स्वर भवरोह में

उतर चुके थे, देहरी पर प्रदीप जलाकर रख दिया गया था, जिससे दूसरे लोक की महाप्रस्थान कर गई आत्मा, राग पर प्रकाश पाती रहे, किन्तु इस लोक में जिस अभागिनी के वक्ष का ज्योति पुत्र सदा के लिए बुझ गया था, उसके लिए प्रकाश की हिन्दू शास्त्र में कोई व्यवस्था नहीं थी। दसवें दिन, पीपल के वृक्ष के नीचे भूत पति की अजलि देते, मैंने अपने हाथों को देखा, तो स्वयं कांप गई थी। बिना चूड़ियों के मेरे नंगे हाथ मूसल से लग रहे थे। रंग बिरंगे सूत की घञ्जियों से सवरा पीपल अपने अपने पत्तों की छांव से आधी पगडण्डी घेर था। पंडित जी की श्लोकावृत्ति के साथ पति की प्रेत भुक्ति के लिए दोनों हाथों में जल भरकर मुझे दक्षिण दिशा को छाड़ने का आदेश मिला, तो मैं भय से सहमी हाथ का पानी भी छोड़ना भूल गई थी।

बड़ी अम्मा प्रायः मेरे पास ही बैठी रहती। तेरहवीं के पश्चात्, उ ही ने मेरा पक्ष लेकर पुत्र शोक से जर्जरित मेरे दबसुर के सम्मुख मेरी शिक्षा को पुनर्नवीभूत करने का प्रस्ताव रखा था। मुझे छोटी नन्द के साथ कालेज जाने की अनुमति मिली तो मेरी दोनों जिठानियां कुड़कर रह गई थी। पर लग गए हैं छोटी के, अब देखो क्या उठती है," मझली दिज्यू ने हसकर कहा था। कैसी विचित्र भविष्यवणी थी।

धीरे धीरे मेरे पति की बरसी की तिथि भी आ गई। और मेरे दोनों जिठानियां, देबूलला को अपने बटाक्षों से रससिक्त कर फिर भण्डारघर में चक्कर काटने लगीं। मुझे उन दोनों को देखकर उबकाई आने लगती। एक और तो उनके व्रत और कोरे अनुष्ठानों का अन्त नहीं रहता, दूसरी और रंगीले देवर से उनका मर्यादाहीन आचरण देखकर मैं दग रह जाती। दिन में जिस चादर को बिछाकर, भक्ति भाव से सिर हिलाती और कृपालदत्त पंडित जी से शिवपुराण सुनती, रात को उसी चादर की चादनी बिछाकर देबूलला और उनके एक रसिक प्रवर मित्र को लेकर, ताश की ब्रिजलीला जमाती। दोनों जिठानियां अंग्रेजी के नाम पर ए, बी भी नहीं पहचानती थीं, किन्तु आक्शन और कण्ट्रैक्ट ब्रिज के अखाड़े में कुशल से कुशल खिलाड़ी को भी वे बुरी भाति पछाड़ देती थीं।

देबूलला बार बार मुझे भी आमंत्रित करते रहते, पर मैं बड़ी अम्मा के पास बठी रहती। कभी कभी देबूलला के आग्रह से बड़ी दिज्यू बुरी तरह झुझला उठती, "नहीं आती, तो ब्रकार क्यों खींच रहे हो—ताश खेलना क्या विमांगी लोगों का काम है? छोटी ठहरी कालेज की सड़की, वह क्यों खेलेगी? वह तो पढ़ लिखकर कलक्टर बनेगी है न, छोटी?"

बड़ी दिज्यू न जाने आज तुम कहा हो। यदि पास होती, तो दिखा देती, कलक्टर ही नहीं कमिश्नर ने भी मेरे पांव घोंए हैं। ऐसे ही एक विदेशी अतिथिदल को घुमाने कश्मीर से गई थी। वहा की स्वर्गीय भील में हमारी हाउसबोट 'स्वीट

किस' नीले पीले फूला से सजाई गई थी। ऐंठी मरोड़ी मूछा का स्वामी, एक भवकाशप्राप्त भाई० सी० एस० कमिश्नर भी हमारे दल में था। नौकरी से भवकाश प्राप्त करने पर भी वह जीवन की मौज मस्ती से भवकाश प्राप्त करने के मूड में एकदम ही नहीं था। कभी लडखडाती किस्नो का बहाना दूढ़, भवारण ही मुझ बाहा में सभास सेता, कभी जार-ओर से डबबाल की कविता की प्रावृत्ति करने लगता और कभी मेरे पास झुककर पूछ बैठता, 'बता सकते हैं, यहा हाउसबोट का चलन कब स हुमा ?'

मेरे विदेशी पयटव भी, मेरी व्याख्या सुनने मेरे इद गिद घेरा घनावर लडे हो जाते। भपन घुप व चश्मे को साधवर मैं अपनी वण्ठनली का टपरिकाड चालू कर देती कि किस प्रकार एक विदेशी न कश्मीर की घरा पर प्रासाद बनाने की अनुमति मांगी थी, कश्मीर-नरेश का चतुर मस्तिष्क विदेशी की चाल का भाप गया था।—छोटा-सा प्रासाद बनाकर वह चतुर विदेशी किसी दिन कश्मीर की घरा की भपन प्रासादो से भर देगा। रात ही रात में एक नये कानून की सष्टि हुई थी, विदेशी प्रासाद अवश्य बना सकता है, पर उस घरा पर उसका अधिकार नहीं रहगा। विदेशी ने फिर भी बौद्धिक घतरज की बाजी जीत ली थी, एक चलता फिरता प्रासाद जल में तरावर। स्थल पर बन प्रासाद का अधिकार का प्रश्न उठ सकता था, जल पर तैरते प्रासाद पर कंसी आपत्ति ?

मुसलमान कमिश्नर भपन चट किए गए प्रश्न का पट उत्तर पाकर खिल गया था। मेरी सलीमशाही जूती में कीचड़ लग गया था, चट से भपना रेशमी रुमाल निकालकर पाछत हुए उसने कहा था, "आपको एयर होस्टेस किसने बना दिया, भाई० ए० एस० में बठी होती तो निश्चय ही कलकटर बन जाती।"

मैं कैसे कहती, कभी यही मेरी बड़ी दिज्जू ने भी कहा था।

प्रयाग के कुम्भ-स्नान के लिए जब मैं बड़ी भग्मा और जिठानियों के साथ त्रिवेणी तट पर गई थी, तब प्रयाग के पण्डे की विलक्षण स्मरण-शक्ति दखकर दंग रह गई थी। कुमायू का कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसकी वशवेली की जड़ उसके मस्तिष्क में न हो, फला जो फला के बेटे, बाढ़ माल पर तिल, एक माल कानी ! घ य था वह पण्डा, किन्तु आज मैं उस पण्डे को भी मात द सकती हू। बड़ी नाव में हम भरकर वह सगम में डुबकी लगाने ल गया था। हाथ पकड़कर दोनो जिठानिया मुझे गहरे जल में खींच ल गई थी, मिट्टी रेत से सनी वह पुरानी खखड नाव और फूलो से सजा कश्मीर का वह शिकारा, अन्तर था। अन्तर नहीं था, पुरुष की लोलुप दृष्टि में। जल में डुबकिया लगाने पर पतली साड़ी स भ्रकत मेरे देह लावण्य में उस प्रौढ पण्डे का भूखी दृष्टि और भील में तरकर बाहर निकलने पर मुझे निगलती उस भाई० सी० एस० प्रौढ कमिश्नर की भूखी दृष्टि में

क्या कुछ अंतर था ? मेले की भीड़ भी चीरती दोनों जिठानियों में मभली के उत्साह का अंतर नहीं रहता । यह माना उनका शुष्क जीवन की एक सुरम्य पिकनिक थी । भिखारियों की भीड़ की, शिव की बारात के सम्मुख वे ठगी सी सही रह जाती । प्रत्येक अणु, घिनौन भिखारी का इटरव्यू लेते लेते, कभी अपनी हृदयहीन हसी से दिखाए गुजा दती, 'मर, अभागे ! नाक कहा गई रे तूरी ! हाय हाय छाटी, देख देख, मुह है ही नहीं क्या र, खाना कैसे खाता है तू ?' लकड़ी की गाड़ी में सुजपुज मांस के बिसी लोथड़े सब एक-एक प्रश्न पूछती कि पण्डा भी बड़बड़ाने लगता, 'बहूजी, तौरथ बनन बाइ हो या भला दखो ।'

चुप रहा, पण्डाजी, ऐसी चीजें क्या बार-बार मिलती हैं दखन को ! बहुत हडबडी भचाई, ता आप दे दूगी, तुम्हारी भी ऐसी ही गाँत हागा भगले जनम में !' हो हाकर रसिक पण्डा भरी जिठानों के कान ही के पास मुह ले जाकर न जान क्या कहता कि वह हसती हसती दुहरी हो जाती । स्पष्ट न सुन पाने पर भी पण्डे के अस्पष्ट स्वर में सुन लिए थे । उस अभागे नासिकाविह्वल भिखारी की दुरवस्था का किसी नासिका लालुप बीभत्स राम ने सबध जाडकर त्रिपुण्डघारी पण्डा अपना अश्लील परिहास से रसिकचित्त का परिचय दे रहा था और मेरी दोनों जिठानियाँ अपने रामनामो दुपट्टे मुह में ठूसे हसती हसती दुहरी हो गई थी ।

कभी-कभी मुँह बड़ी अम्मा की तटस्थता पर झुंझलाहट हो जाती । सब कुछ देखकर भी वे निरंतर माला जपती रहती ।

आए दिन हमारे यहाँ कीर्तन सभा हाती । मादल मद्धित गोल कमरे को गगाजल से धोकर, बीच में यज्ञवदी सजाई जाती । कमकाडी आह्वानों का उदर पूति के हेतु मेवे की खीर लवालब कड़ाही में छलकते लगती । उपासना-सभा का सभापतित्व ग्रहण करता, गैरिकवसनधारी सौम्याकृति का पाखंडी स्वामी आत्मानन्द । उसके गौर ललाट पर गौरीचन का टीका रोली से सवरा रहता, दानो बड़ी बड़ी आखा की रश्मी पलकों का सौंदर्य, किसी भी सुन्दरी की पलकों से होड़ ले सकता था । निकट से देखने पर भा उसकी वयस की मरीचिका, चतुर से चतुर व्यक्ति का भी भटका सकती थी । उसके आन का समाचार, पूरे शहर में हवा की भाँति उड़कर फैल जाता और देखते ही देखते, हमारा दालान डांडो और घोडो से भर जाता । भजन कीर्तन और आभूषण करताल के संगीत से ऊबकर मैं सोमा त के कमरे में बंद हो जाता । उस घूँत स्वामी का मैं नस नस पहचानती थी । मुँहसे बहता था, 'राधिका ।' जयदेव के पद गुनगुनाता वह निलज्ज, कभी बड़ी अम्मा के सामने ही कहता, 'राधे, मेरे पंर दाब दे ।'

बड़ी अम्मा मेरी चुप्पी का दूसरा ही अर्थ समझती, सायद उतने बड़े महात्मा

वे चरण छुने मे मुझे सकौच हो रहा था ।

“देख क्या रही है, बहू, दाव दे न पैर ।” बड़ी अम्मा का आदेश मैं वंस टाल सकती थी ? सिर झुकाए उसके चरण दावने लगती, तो मुझे लगता असरय घिनौने कीड़े मेरी हथेलियों मे कुलबुलाने लगे है । कभी कभी सबकी दृष्टि बचाकर, वह मेरी हथेली अपने पैरों के बीच दबा लता, उसकी भूखी आखा की दुनाली से वासना की गोलिया दनदनाने लगती, दूसरे ही क्षण मेरी कठोर मुख मुद्रा देख, वह नट की फूर्तों से अपने को सयम की रस्सी पर साध लेता और ऊँचे स्वर मे गीता के श्लोक की आवृत्ति करने लगता । मेरे जी मे आता, उसकी स्वर्ण मण्डित पादुका उसके सिर पर द भारू, पर लोगो की दृष्टि मे उस परम हस बाबा की महिमा अपार थी उसका चरणोदक शीशियों मे भरकर विदेश तक भेजा जाता था । मैं कुछ कहती, तो वह लपट मुझे ही सपेट लेता । फिर एक बात और थी, उस तान्त्रिक की अघोरी दृष्टि मे कुछ ऐसी सम्मोहिनी थी कि वह एक बार आखें चार होने पर देखने वाले को मनमानी उठक बठक करवा सकता था । मैं कभी भूलकर भी उसकी ओर नहीं देखती थी । उसने भाति भाति की चेष्टाएँ कर ली थी । कभी कहता, “राधे, देख तो मेरी आख मे शायद तिनका पड गया है, बडा गड रहा है ।” मैं बड़ी दिज्जू को भेज देती । कभी वह फिर पुकार लगाता, “राधे, मेरी आखो मे चन्द्रोदय बूटी तू ही डाल दे बड़ी और मन्गली ठीक से नहीं डाल पाती ।” मैं कोई न कोई बहाना बनाकर टाल जाती । उधर देबूलला का दु साहस दिन दुगुना, रात चौगुना बढता जा रहा था । कई बार साहस बटोरकर बड़ी अम्मा से कहने भी गई, किन्तु साल पैली मे छिपे उनके हाथ माला फेरते रहते, आखो मे उनके अ तर की चुबिता छलक उठती, पाठ करते वरत वे दशन के भटके से ही पूछनी ‘कुछ काम है ?’

उनकी मोले शिशु की सी अम्मान हमी देखकर मुझे कुछ कहने का साहस ही न होता और मैं चुपचाप सौट आती । देबूलला पर बड़ी अम्मा का अगाध स्नेह था, फिर एक लम्बे अरसे से वे मेरी जिठानिया के साथ रहते आए थे, कभी किसीको उनके विरुद्ध शिकायत नहीं रही थी मेरे ही लिए व एकाएक इतने बुरे कसे हो गए ? फिर मेरे पास सबूत ही क्या था ? वही बड़ी अम्मा भी मुझे गलत समझ बैठी तो मेरा कहा ठिकाना रह जाएगा ? जल मे रहकर मगर से वर नहीं हो सकता, फिर मगर क्या एक ही था ?

भुवित का एक ही उपाय था । चन्द्रावती मसीह मेरे साथ पढती थी । हम दोनो की मन्त्री, विमाता की पैनी दृष्टि की लपटो से भी नहीं झुलस पाई थी । मिशन की नाना सुविधाओं की सीढ़िया पारकर वह एक ऊँची नोकरी पा गई थी । दिल्ली मे वह अपने मामा के साथ रहती थी, “मामा बहुत बड़े-बड़े लोग

को जानते हैं, मुझे अनायास ही हवाई जहाज में एयर होस्टेस बना देत," उसने लिखा था, पर यह काला-बलूटा चेहरा निगोड़ा बैरी बन जाता है। तू यहाँ चली आ और तेरे परी सी चेहरे का दखत ही वे तुझे एयर होस्टेस बना लगे।"

कितना सुन्दर प्रस्ताव था। पृथ्वी के भूखे मोड़ियों की पहुँच से दूर उड़कर एकदम आकाश में। मेरी दोनों जिठानियाँ स्वामी जी के साथ, सुदीर्घ तीथयात्रा-भ्रमण पर चली गई थी। बड़ी अम्मा के दोनों हाथ रहत लाल चली में और आखों ने छल प्रपञ्च का पकड़ना नहीं सीखा था।

मैं भाग गई, क्षण भर को सत्कारा की बेडिया न पैरा का जकड़ लिया, अंतरात्मा धिक्कार उठी, छि छि, जिस पाली में खायी, उसीमें छेद कर रही है। जिस बड़ी अम्मा ने पढाया, स्वतंत्रता दी, उसीको छलकर भाग रही है।' फिर आखों में तैरने लगती बाबूजी की कमनिष्ठ सतर पीठ, लोणा क व्यंग्य बाणों से छिदता मौसी का वरुण चेहरा, पीलिया रोग से उठे रण मातृत्वहीन कुंदन की सहमी सहमी आँखें। कभी कभी वह भागकर मुझसे मिलने चला आता था, अब किसके पास जाएगा ?"

पर आसुआ के साथ साथ घुघली आकृतियाँ धीरे धीरे बह गई—मैं अब पृथ्वी छोड़कर आकाश पर आ गई हूँ। दरिद्र भाई की व्यथा हृदय को अभी भी कचाटती है। जब अंतिम बार वह मुझसे मिलने आया, तो मौसी के बेटे की उतरन का अघरगा बही नीला ब्लेजर पहन था, जिसका दोनों कुहनियों पर मैं लाल पैंबंद लगा दिए थे। अब पैंबंद भी फटकर फड़फड़ाने लगे थे। उसकी आँखों की नीली पुतलियाँ, काँच की नीली गोलियों-सी चमक उठी थी। हम दोनों भाई बहनों का आँखें एव ही सी थी—गहरी नीली।

चार मील दूर गणनाथ के स्कूल का उतार वह अपने लाहे के पहिये का, तार के चाबुक से भगाता मिनटों में पार कर लेता, किंतु लौटने की चढ़ाई का माँग लोह के निर्जीव अश्व और सजीव अश्वपति दोनों को क्लेश कर देता।

दिन डूबते ही उसकी बालसुलभ उत्सुकता और बढ़ जाती, 'दीदी, तुम क्या आसमान के सितारों में अम्मा का सितारा पहचान सकती हो?' वह लटा लटा मुँहसे पूछता। नजान किसने उससे वह दिया था कि भरने के बाद सब सितारे बतकर टिमटिमाने लगते हैं। दीदी, तुम्हें कोई दस लाख रुपये द, तो क्या तुम अकेली जागेश्वर के शमशानघाट तक जा सकती हो?' 'हाँ,' मैं उसके निरर्थक प्रश्न का निरर्थक उत्तर देती और वह मेरे पास सरप आता।

दस लाख रुपये के लोभ में, शमशानघाट की यात्रा अकेली ही कर लेने की दुःसाहसिनी दीदी का दूढ़ सकल उसे विचलित कर देता।

कभी-कभी हमारे ग्राम के आकाश का बड़ा विदोष कर धुमा

विमान निकल जाता, तो वह पगला भा आता, “अरे मदनिया हिस्वा देखो चीलगाड़ी । दीदी, चीनगाड़ी, आहा रे, चीलगाड़ी, ओ हो रे चीलगाड़ी ।”

अपनी पतली सीक सी बाहे आकाश की ओर नचाता वह गोल गोल घूमने लगता, “चीलगाड़ी रे चीलगाड़ी ।”

आज उमकी दीदी उसी चीलगाड़ी में न जाने कितने देश विदेश घूम चुकी है । राजसी अतिथिया के वायुयान में मेरी उपस्थिति अनिवार्य ही उठी है । मेरी नीली आखें, गोरा रंग कभी कभी किसी विदेशी अतिथि को उलझन में डाल देत हैं ।

‘एक्सक्यूज मी क्या आपतुर्की है ?’ वह मुझसे पूछता है—मैं हस देती हूँ । अपनी भुवनमोहिनी हसी को मैंने अब पहचान लिया है । भारत के वेदा त, दशन, सगीत से लेकर करी पाउडर की भोजन सामग्री साड़ी पहनने की शिक्षा सबका विस्तृत विवरण देकर मैं अतिथियों की आकाश यात्रा को आश्चर्यजनक रूप से मनोरंजक बना देती हूँ । किंतु अचानक हसी कहवहा और प्रश्नोत्तरा के बीच मैं उदासी में डूब जाती हूँ । क्या पता नाचे बिराट घरती पर वायुयान का शब्द सुन, नीले बनेजर के लाल पैब द फडफडाता अपने लोहे के अक्ष के तार के चाबुक से साधे कोई चील चीलकर अपने साथियों को पुकार रहा है “अरे, मदनिया, हिस्वा देखो चीलगाड़ी ।”

सहसा मैं परिश्रम से मुलस्थ किया गया अपना वेदा त दशन और साड़ी-शिक्षा का पाठ भूल जाती हूँ, मुझे लगता है आकाश के नीले बनेजर में डूबते सूर्य की अरुणशिक्षा के दो फटे पैब द फडफडा रहे हैं और दा दुबल सींक से हाथ आकाश की ओर उठा उठाकर कोई नाचता घूमता गा रहा है, “आहा रे, चीलगाड़ी । ओहो रे चीलगाड़ी ।”

सती

गाड़ी ठसाठस भरी थी स्टेशन पर तीथयात्रियों का उफान सा उमड़ रहा था। एक तो माघ की पुण्यतिथि में अश्व-कुम्भी का मेला उसपर प्रयाग का स्टेशन। मैंने रिजर्वेशन स्लिप में अपना नाम ढूँढा और बड़ी तसल्ली से अग्रे तीन नामों की सूची देखी। चलिए तीनों महिलाएँ ही थीं पुरुष सहायात्रियों के नासिकागजन से तो छुट्टी मिली। दो महिलाएँ आ चुकी थीं, एक जैसा कि मैंने नाम से ही अनुमान लगा लिया था महाराष्ट्री थी और दूसरी पंजाबी। तीसरी मैं थी और चौथी अभी आई नहीं थी। मैं एक ही दिन के लिए बाहर जा रही थी इसीसे एक छोटा बटुआ ही साथ में था। ग्रामपास बिस्वरे दोनों महिलाओं के भारी भरकम सूटकेस, स्टील के बक्स और मेरपवत से ऊँचे ठसे कसे होल्डात देखकर मैंने अपने को बहुत हल्का-फुल्का अनुभव किया। वैसे भी मैं सोचती हूँ बक्स होल्डालहीन यात्रा में जो सुख है वह अग्रे किसी में नहीं। चटपट चढ़े और छटखट उतर गए, न कुलियों के हथेली पर घरे द्रव्य को अचनापूण दृष्टि से देखकर 'ये क्या दे रही हैं साहब' कहने का भय न सहायात्रियों के उपालम्भ की चिन्ता। मेरे माघ की महाराष्ट्री महिला ने अपने बहुदाकार स्टील के बक्स एक के ऊपर एक चुनकर विरामिड से सजा दिए थे लगता था वह प्रत्येक वस्तु के लिए स्थान और प्रत्येक स्थान के लिए वस्तु की उपादेयता में विश्वास रखती थी। वह स्वयं बड़ी शालीनता से लेटकर एक सीध में दो तकिये लगाए एक मराठी पत्रिका पढ़ने में तल्लीन थी। दूसरी पंजाबी महिला के पास एक सूटकेस, टोकरा और बिस्तरा ही था, पर तीनों बेतरतीबी से बिखरे पड़े थे। उनका एक सुराहीदान, जिसकी एक टांग, अग्रि काश सुराहीदानों की भाँति कुछ छोटी थी, बार-बार लुढ़ककर उनकी परेशान किए जा रहा था। वे बेचारी चश्मा उतारकर रखती, हाथ की जामूसी अंग्रेजी पुस्तक जिसे पढ़ने में उन्हें पर्याप्त रस आ रहा था, औंधी कर बथ पर टिकाती, झुंझलाकर सुराहीदान ठिकाने से लगाकर जैसे ही हाथ की पुस्तक में रस की बुबकी लगाती कि सुराहीदान फिर लुढ़क जाता। मुझे उनकी उलझन देखकर बड़ी हसी आ रही थी, वैसे मैं उनकी परेशानी काफ़ी हद तक दूर कर सकती थी बयाकि सुराहीदान मेरे पास ही घरा था। मैं उसकी लगड़ी टांग को अपनी बथ में टिकाकर लुढ़कने से रोक सकती थी। पर सुराही को ऐसे बेतुकी बाँठ की मवारी में गाथ लेकर चलनेवालों से मुझे कभी सहानुभूति नहीं रहती। पंजाबी महिला सम्भवत

किसी मीटिंग में भाग लेने जा रही थी, क्योंकि उनके साथ एक मोटी-सी फाइल भी चल रही थी, जिसे खोल वे बीच-बीच में हिल-हिलकर कुछ घ्रांक्षों को पहाड़ों की भाँति रटने लगती थीर फिर बंद कर उपयोग पढ़ने लगतीं। उनकी सलवार, कमीज दुपट्टा यहाँ तक कि कुमाँल भी खदर का था और सायद उसीके सघन से उनकी लाल नाक का सिरा और भी धवीरी लग रहा था। उनके चेहरे पर रोब था, किंतु सावण्य नहीं। रंग गोरा था किंतु खास में हाथ की बुनी खादी का सा ही सुरदरापन था। ठुड़ी पर एक बड़े से तिस पर दो-तीन लम्बे बाल लटक रहे थे, जिन्हें वे अगुली में लपेटती छल्ले सा घुमा रही थी। या वे प्रौढा कुमारी थी, या फिर विधवा क्योंकि चेहरे पर एक अजीब रीतापन था जीवन के उल्लास की एक घाघ रेखा मुँह बढ़ने से भी नहीं मिली। जासूसी पुस्तक की घामने वाले उनके हाथों की बनावट मर्दानी और पकड़ मजबूत थी। ये वे हाथ नहीं हो सकते, मैं मन में सोच रही थी, जो बच्चों को मोठी सोरी की घपकनेँ देकर मुलाते हैं पति की कमीज में बदन टाकते हैं, या चिमटा सनसी पकड़ते हैं। ये वे हाथ नहीं हैं जिनकी हस्तरेखाओं को उनकी कमरेखाएँ घूस कालिख की दरारों से मलिन कर देती हैं।

मेरा अनुमान ठीक था, स्वयं ही उन्होंने अपना परिचय दे दिया। वे पंजाब के एक विस्थापित स्त्रियों के लिए बनाये गये आश्रम की सचालिका थी। हाल ही में विदेश से लौटी थी और सरानऊ की किसी समाज-कल्याण गोष्ठी में भाग लेने जा रही थी। समाज सेविकाओं में उनका नाम अग्रणी था।

महाराष्ट्री महिला के परिचय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। उस स्वरूप भाषिणी सुंदरी प्रौढा ने हमसे से किसीको भी, मैत्री का हाथ बढ़ाकर प्रोत्साहित नहीं किया। हाथ की मराठी पत्रिका को पढ़ती वे कभी स्वयं ही मुसकराती जा रही थी और कभी गहरी उदासी से गदन मोड़ ले रही थी। स्पष्ट था कि किसी कुशल मराठी कथा लेखक की सिद्ध कलम का जादू उन्हें कठपुतली-सी नचा रहा था। वे हमारे डिब्बे में होकर भी नहीं थी। उनके गोरे रंग पर उनकी लाल शोलापुरी साड़ी लपटें सी मार रही थी। गोल परिपाटी से बाधा गया जूड़ा एंडो घुम्बी केशराशि के भ्रूलघन का परिचय दे रहा था। कानों में सात मोतियों के वर्तुलाकार कणपूल थे और गले में था दुहरी लड का भगलसूत्र, जिसे वे अम्प्रास वक्ष बार-बार दातो में दबा ले रही थी। उनके सामान पर सम्भवतः उनके पति के नाम का लेबल लगा था—मेजर जनरल वनोत्तर और वे वास्तव में थी भी मेजर जनरल की ही पत्नी होने के योग्य। पूरे चेहरे में दोनों आँखें ही सबसे ज्वलंत आभूषण थी। वे कुछ भी नहीं बोल रही थी पर वे बड़ी बड़ी आँखें निरंतर हसती मुसकराती, परिचय देती, मजाक उड़ाती जा रही थी। कभी वे मुँह देवती कभी उस पंजाबी महिला को पर आँखें चार होते ही बड़ी घबराहट से दृष्टि फेर भगलसूत्र दातो में दबा पत्रिका पढ़ने लगती।

गाड़ी ने सीटों की ओर ठीक इन्ही समय हमारे साथ की बीबी महिला ने हिम्मे में प्रवेश किया। गाड़ी मानो उन्हें के लिए रुकी थी, डोंट-डोंट की घुड़कारों छोड़ती गाड़ी बत्ती और उत्ती बस्के के साथ दो महिला, एक से सीट पर उतर पड़ी। उनके हाथ में बैग की बनी एक छोटी-सी टोकरी थी और बाइ में चोचोर बहुभा दबा था। 'भोक ! सन्ना था गाड़ी हट हो जाती। बान रे बाप, बानी दौड लगानी पती।' ने उन्हें देखती हो रह गई समाज-सेविका ने जानूरी उपवास बन्द कर दिया, मराठी मोसलिया ने बरमा उतारकर हाथ में ले लिया और बैठ गई।

हम तीनों की ही दृष्टि उस बीबी पर आबद्ध हो गई। दोन हमारा गरीब था, वह बीड ही देखने लायक थी।

हमारा धूरना उहोने आप लिया, 'केम बेन, दट्ट सन्धी ह ना मी।' वह हसी 'छह फुट साडे दस इंच दुधी एबजंड, जायद भारत की सबसे लम्बी नारी। बलिए, यह मञ्छा है कि इस जिम्मे में आज हम चारो महिलाएँ ही हैं, नहीं तो मुए पुरुष भी मुझे चूरते।' फिर वे दनादन हमारा इण्डरगर् रोने लगीं। पहला प्रहार मुझ पर ही हुआ। समाज सेविका ने ठक-ठक कर दो तीन रुखे उत्तरा के चाटे घर दिए।

महाराष्ट्री महिला ने हिंदी नहीं जानता' वह पीठ फेर ली, तो उस महिला ने तुटिहान मग्नेजी का धाराप्रयाट भाषण भ्राष्ट्र दिया, 'मुझे मदालसा कहते हैं मदालसा सिघाडिया। बल ही प्रिटोरिया से आयी हू, अपने पति की मर्त देह लेन।' मैं चौंक गई। समाज सेविका ने अपने हरे शरारतार पर लज्जित होकर, चट भागे बढ उसके दोनों हाथ धाम लिए, 'अरे राम राम, कोई पुर्ण्डरा हो गई थी क्या?' उहोने बडे दद से पूछा।

मदालसा की वेशभूषा में सद्य वैषम्य था वहीं कोई भिन्न नहीं था। वे लम्बी होने पर भी पठानिन सी गठे बसे शरीर की लावण्यगयी गतधीधमा भी। उनके बाल किसी दामी संलून में कटे सबरे लग रहे थे। अपने धानी रेशमी साडी की वे हाफ पैट की भाति ऊपर चढा, दोनों पैरों की पालथी भार, भाराम से जम गई।

"असल में पिछले वर्ष, एक पक्कारोही दस के साथ मेरे गाँव भारत भाग्य थे, वही एक एवलेंडा (तूफान) के नीचे दबकर उाकी मृत्यु हो गई।"

"ऊच ऊच ऊच, तो क्या मृत देह अम मिली?" गीने पूछा।

"हा, भारत सरकार ने मुझे सूचित किया, तो भागती भाई। मर्क में अभी देह, सुना ज्यो की त्यो मिली है। मेरे मुने स्नेट्टर था, (बरो लम्होने पहना एक प दा भी नहीं टूटा।"

मृत पति की स्मृति ने उह गाय विभोर कर दिया। अद्भ

रूमाल निकाल, वे कभी घाखें पोछने लगीं, कभी अपनी सूपनखा से लम्बी नाक। बेचारी करती भी क्या। कोई भी जनाना रुमाल उस नाक का अस्तित्व नहीं सम्भाल सकता था।

अचानक हम तीनों को, बेचारी मदालसा का एक बप पुराना वैधाय, एक दम ताज़ा लगन लगा।

"तो क्या अब आप अपने हसबैण्ड का 'डैड वाडी' लेकर प्रिटोरिया 'पलाई' करेगा?" महाराष्ट्री महिला ने पूछा।

"नहीं बा।" मदालसा सीट पर लेट गई, तो लगा एक लम्बे खजूर का कटा पेड़ ढह गया।

एक लम्बी सास खींचकर उन्होंने कहा "मैं असल में सती होन भारत आई हूँ।" हम तीनों को एक साथ अपने इस उत्तर का बलोरोफाम सुधा सती ने एकदम आखें मूंद ली, जैसे वह चाह रही थी कि अब हम उन्हें शांति से पढ़ी रहने दें।

ऐसा भी भला किसीने सुना था इस युग में। सुस्पष्ट उच्चारण में अंग्रेज़ी बोलन वाली, छह फुट साढ़े दस इंच की यह बाया, कल बफ में दबी पति की एक साल वाली लाश को छाती से लगा, जल भुाकर राग हो जायेगी।

"नहीं, आपको ऐसी मूल्यता करने का कोई अधिकार नहीं है। यह एक अपराध है, क्या आप यह नहीं जानती?" लादीयारी महिला उठकर मदालसा के सिरहाने बठी, उसे गम्भीर भाषण की गोलाबारी भाडने लगी, जैसे चिता सधमुच प्रज्वलित हो चुकी है और सती लपटों में कूदने को तत्पर है। 'भाषावेश के दुबल क्षणों में नारी कभी बड़ा बचपना कर बैठती है इसका मुझे व्यापक अनुभव है। अभी हाल ही में मेरे आश्रम की दो युवतिया ऐसी मूल्यता कर बठी। मुझे ही देखिए भारत विभाजन के समय मेरे पति की हत्या कर दी गई पर मैं क्या सती हो गई? सिली सेंटिमेट? यदि मैं भी उस दिन आपकी भाति सती हो जाती तो आज यह देह दीन-दुखिया के काम आ सकती थी? पहले मॉडल जेल की अध्यक्ष रही और अब गिरी बहनो के आश्रम की देख रेख करती हूँ।"

'ना, बेन, ना।' मदालसा ने करवट बदली, "मैं तो सती होने ही भारत आयी हूँ। हाय मेरा नीलरत्न, नीलू डालिंग।" कह वह फिर मदाने रूमाल में मुह छिपाकर सिसकने लगी।

"आप चाहें तो मैं आपके साथ चल सकती हूँ आपके पति के अंतिम सस्कार में सहायता कर आपको अपने आश्रम में ले चलूँगी," समाज सेविका ने अपने उदार प्रस्ताव का चुगला डालकर मदालसा को रिश्ताने की चेष्टा की।

मदालसा बड़ी उदासी से हसी "धन्यवाद बेन, पर ब्रह्मा भी अब मुझे अपने निश्चय से नहीं डिगा सकते। यह रोग हमारे खानदान में चला आया है। मेरी

परनानी तो राजा राममोहन राय और सर विलियम बेंटिक को भी घिस्सा देकर सती हो गई थी। और नानी के लिए तो लोग कहते हैं कि नानाजी की मृत देह गोद में लेकर चिता में बैठते ही, स्वयं चिता घू घूकर जल उठी थी। फिर मेरी मा और अब मैं।

“लैर, हटाइए भी, पता नहीं किस घुन में आकर आप लोगो से कह गई। ‘आई शुड नाट हैव टोल्ड यू’ (मुझे आपसे नहीं कहना चाहिए था)। चलिए हाथ मुह धोकर खाना खा लिया जाए। क्यों, क्या खयाल है?” उन्होंने अपनी कदली स्तम्भ सी जघाओं पर दोनों हाथा से जिताल का टुकड़ा-सा बजाया।

हम तीनों को एक बार फिर आश्चर्य उदधि में गोता लगाने को छोड़, बे टोकरी से एक स्वच्छ तौलिया, साबुन निकाल गुसलखाने में घुस गई।

उनके जात ही हम तीनों परम मंत्री की एक डार में गुप्त गए।

“अजीब औरत है। क्या आप सोचती है यह सचमुच सती होने जा रही है?” मैंने मराठी महिला से पूछा।

“देखिए, मरनेवाला कभी ढिंढोरा पीटकर नहीं मरता।” वह हसकर बोली, “हमको तो इसका यन् स्क्रू होता लगता है,” उन्होंने अपने माथे की ओर अंगुली धुमाई “इस जमान में ऐसे सती फती कोई नहीं होती।”

“क्षमा कीजिएगा” खादीधारी महिला बड़ी गम्भीरता से बोली, “मुझे औरतो का अनुभव आप दोनों से अत्रिक है। मैं ऐसी भावुक प्रवृत्ति की भोली औरतो को चेहरा देखत ही पहचान लती हूँ। आपसे नहीं दखी आपने? कितनी निष्पाप, पवित्र और उदार है। मुझे पक्का विश्वास है कि पति की मृत देह देखते ही यह वही मूलता कर बैठेगी, जिसका यह खुले आम ऐलान कर रही है। लगता है मुझे अपना प्राग्राम कैसिल कर, इसके साथ जा पुलिस को खबर देनी होगी। तभी इसे बचाया जा सकता है।”

इतने ही में मदालसा, हाथ-मुह धोकर ताजा चेहरा लिए आ गई। मेल गाड़ी बन, ग्राम, नदी, नाले, पुल कूदती फादती सर्राट से भागी जा रही थी। मदालसा ने अपनी टोकरी खोलकर नाश्तादान निकाल लिया। जैसे खरबूजे को देखकर गरबूजा रंग पकड़ता है ऐसे ही एक यात्री को खाते देख दूसरे सहयात्री को भी भुल लग आती है। क्षण भर में सनीप्रथा पर चल रही बहस, कपूर घुए की भाति उड़ गई और चटाचट नाश्तेदान खुलने लगे।

“आइए ना, एक साथ बैठकर खाया जाए।” मदालसा ने कहा और बड़े यत्न से, स्वच्छ नैपकिन बिछा, छोटे छोटे स्टील के बटोरपान सजाने लगी।

“धन्यवाद।” मैंने कहा “पर हमारे साथ भी तो खाना है इस बीन खाएगा?”

“बाह जी बाह, उसे हम खाएंगी, ईश्वर ने यह छह फुट साढ़े दस इंच दुग

आखिर बनाया किसलिए है ?" उनकी भुवनमोहिनी हसी ने हम पराजित कर दिया । वैसे भी हम तीना ने, एक दूसरी को, वाक्दृष्टि से, सती के घृत पक्वान को आखो ही आखो में घूरते चखते पकड़ भी लिया था । सुनहरी मोयनदार कचोडिया थी, मसाला की गहरी पत में डूबी सन्निधा थी, रायता था, चटनी थी—धीरे ध ठास ठासकर बाधे गए, मेवा जड़े बूटी के लड्डू । "यह तो सफर का खाना नहीं, अच्छा-सासा विवाह भोज है," समाज सेविका की आखो स लार टपक रही थी, "बड़ा हेरो खाना लकर चली हैं आप ।" उन्होंने कहा और कचोडिया पर टूट पड़ी ।

हम तीनों के पास, भारतीय रेल यात्रियों के साथ युग युगांतर से चली आ रही वही पूरी तरकारी और आम के अचार की फाकें थी । अपना खाना खाया ही किसने । मदालसा के स्वादिष्ट भोजन को चटखारे ले लेकर हम तीना ने साफ कर दिया, उधर वे अकेली ही हम तीना के नाश्तादानों को जीभ से चाट गई थी । विघाता ने सचमुच ही उनके शरीर के दुग में असीम गोला-बारूद भरने के लिए अनेक कोष्ठ प्रकोष्ठा की रचना की थी । महात्पति के कई तार और मन्त्र सप्तक के डकार लकर, हाथ मुह धो मदालसा ने टोकरी में से एक मस्जिद क गुम्बद के आवार का पानदान निकाला ।

"यह मेरे नीलू न मुझे बगदाद स लाकर भेंट किया था । उसे पान बेहद पसंद थे, इसीसे एक डोली मघई पान और यह पानदान लेकर ही कल चिता में उतरूंगी ।" इसी शहीदाना अदा से, हम तीना को धायल कर उन्होंने नेबड़ा, इलायची और मनपुरी सुपारी से ठसा बीड़ा बसाया ।

सतीप्रथा पर फिर खारदार बहस छिड़ गई— हाथ मेर प्रतिम सफर की प्यारी साधिनो, तुम अब हमे 'वही रोक सकती,' मदालसा सेट गई और बड़ी सघी आवाज में गाने लगी ' 'न जाणयू जानकी नाथे सयारे शू धवानू छे ' 'समझी इसका अर्थ ?" उन्होंने हसकर मुझसे पूछा, जानकीनाथ भी यह नहीं जान सके थे कि सुबह क्या होगा ।"

अब मुझे लगता है उस गुजराती पद की व्याख्या उन्होंने सम्भवत हमारे ही हित में की थी । 'चलो जी अब सो जाओ सब आज इस पृथ्वी पर मेरी यह प्रतिम निश्रा है वेन, बहस व्यथ है । चलो गुंडनाइट और बहुत प्यारे प्यारे सपने दिखें तुम तीनों को ।' सचमुच ही उसकी शुभकामनाओं ने जादू का असर किया । ऐसी नींद तो पहले कभी आई ही नहीं थी । और सपने ?

कभी लगता—जबमगाता आभूषणों के ढेर में गाते खा रही हूँ, हीरे के हारों से गदन टूटी जा रही है बाजूबंद अंगूठियों के भार में हड्डियाँ खिसकी जा रही हैं । और साडियाँ ? क्या क्या रंग हैं कैंसा चिकना रेसम । साडियाँ के विशाल उदधि में रंगीन बीमती साडियों की तरबें रह रहकर उठ रही हैं । इससे

प्यारे सपने और क्या दिख सकते थे ? पर सपनों का अन्त भी समुद्र के ज्वारभाटे की ही भांति हुआ—वास्तविकता की अंतिम तरंग ने पटाक से हम तीनों को धोबी पछाड़ दी, आखें खोली तो सती गायब थी ।

“हाय मेरे स्टील का बक्स !” मिसेज वनोलकर बथ से उतरते ही लडखड़ा गई, “समझे तो मेरे विवाह का जडाऊ सेट था । लगता है वह सती की बच्ची हमें कुछ बिप खिला गई । सिर फटा जा रहा है ।” उनका गला भर्रा गया । हा, ठीक ही तो कह रही थी, मुझे कोई जसे सावन क झूले की ऊंची ऊंची पेंगें दे रहा था, पूरा डिब्बा गोल गोल घूम रहा था पल्ले के चारों ओर बल्ब, बल्ब के चारों ओर छत और छत के इद गिद कई रेशमी साड़ियां और भारी-भारी आभूषण पहने स्वयं मैं लटटू सी घूम रही थी । कभी जी मे आ रहा था जोर जोर से हसू, कभी दहाड़ें मारकर, रोने को तड़प रही थी । बहुत पहले एक बार भाभी ने भग खिलाकर ऐसी ही अवस्था कर दी थी ।

सुना गया है कि कुकुरमुत्तों को पीसकर बनाया गया बिप भी ऐसे ही मीठे सपने दिखाता है । उनकी खाते ही गहरी नींद आ जाती है, जो कभी कभी दिना तक नहीं टूटता ।

मीठे सपने दिखा सजग मनुष्य को अद्विषिप्त सा कर देने वाला यह अवश्य वही बिप होगा । समाज सेविका दोनों हाथों से सिर धामे बिलख रही थी, ‘हाय, मैं तो लुट गई । मेरे सूटकेस में आश्रम का दस हजार रुपया था ।’

और मैं ? सहसा गोल गोल घूमते रेल के डिब्बे में गाल घूमते मेरे दिमाग ने मुझे सूचित किया, ‘तुम्हारे बटुआ ल गई है, बटुआ ।’

और ले भी क्या जाती । सामान तो कुछ था नहीं पचपन रुपये और एक फास्ट क्लास का वापसी टिकट । सती की चिंता में, मैं यही सामान ही धूनाहुति दे पाई । चैन खींचकर गाड़ी रोकी गई सचमुच ही समाज सेविका को पुलिस को खबर देनी पड़ी, पर सती को बचाने नहीं, पकड़वाने के लिए । वह मिल जाती तो शायद, हम तीनों स्वयं उसकी चिंता धुनकर उसे भोक देती । पर कहना व्यर्थ है, आज तक पुलिस उस सती मैया के फूल नहीं धुन पाई ।

उपेक्षा

कभी कभी, नारी ही नारी के लिए एक जटिल पहेली बन उठती है। वैसे एक नारी के जिस छलनामय स्वभाव का घनिष्ठ परिचय दूसरी नारी को अपने पारिवारिक जीवन में पग पग पर मिलता रहता है, वह आयद किसी पुरुष को कभी नहीं मिल सकता। जिठानी, देवरानी उनद भाभी यहां तक कि एक मा की जाई दो सगी वहनों को भी कभी कभी ईर्ष्या, द्वेष, वामना या लोभ की आरी घीरकर बिलग कर देती है। वंमनस्य के गलावे में जूझती वीरागनाए किसी कुशल फेंसिंग के बलाकार की दक्षता से प्रतिद्विंद्विनी की कभी जिह्वा के प्रहार से घराशापिनी कर देती है और कभी छल बरा से। जहा मूर्ख पुरुष क्रोध से अवे बन पभी पभी फासी के फंदे को भी भूलकर, शत्रुमुड गडासे से अलग कर देत है वहा प्रतिशोध लेने के लिए नारी कभी ऐसी अविवेकपूर्ण मूखता नहीं करती। वह शत्रु की सुस्थाति, सुनाम यहां तक कि उसका सबस्व भी हरण कर सकती है केवल अपनी सीखी जिह्वा के कुटिल प्रहार से। इसमें कोई अदेह नहीं कि नारी ही नारी की सबसे बड़ी शत्रु है। पिररी की सबसे बड़ी प्रतिद्विंद्विनी थी स्वय उसकी भाबी सास। पूरे बीस वष तक उसके विवाह माग में वह नागिन सी अडी खडी फुफकारती रही थी और उन बीस वषों में किस दु साहस से पिररी उसी माग से लुफ छिपकर अपने प्रेमी स मिलती रही थी—मैं सब जानती थी। पर आज यह कैसे हो गया ?

यह छलनामयी मुझे अपनी क्षणिक झलक दिखाकर नारी स्वभाव के रहस्य मय अतलाणव में डुबकिया लगाने छोड गई है। अब अपनी मूखता पर क्षोभ भी होता है। क्यों वही उसे कवे पकडकर नहीं झकझोर दिया ? कम से कम वह भीला चेहरा, पल भर को तो फक पडता। मूख हतबुद्धि भी मैं फोवारे के पास खडी बेंच पर निलज्जता से चाब में चोच मिलाए उस बबूतरी जोडे को देवती ही रह गई थी। सामान्य रूप से हाथ बढाने पर ही मैं उस कबू कठ में झुलते मगल सूत्र के बीच गुप्ते मुगे को बडी निममता से खीच सकती थी, पर जोडे के पीछे मुडने से पहले ही मैं स्वेच्छा से स्वय ही मुड गई। ऊपर की सडक पर पट्टवकर दखा तो बेंच खाली थी। सीजन की उद्देश्यहीन भोड के अथाह प्रवाह में प्रेमी गुगल खो चुके थे।

आज स कोई बीस वष पूव, पिररी ने अपनी सगाई का समाचार मुझे स्वय

तार देकर दिया था। मैं सच कहती हूँ कि उस दिन उसकी सगाई के समाचार से मुझे जितनी प्रसन्नता हुई थी, उतनी शायद अपनी सगाई के दिन भी नहीं हुई। न जाने कितनी बार ऐसे ही हठस पार करने में पिरि के शरीर और मन, दोनों बुरी तरह क्षत विक्षत हो चुके थे।

सालों में एक न होने पर भी उस चेहरे की सुनवाई में एक अनुपम आकर्षण था, सम्बो छरहरी देह, गेहुआ रंग, सुलवा नाक और ऊँचे उठे कपोल। आँखें बड़ी न होने पर भी चौबीसो घण्टे उज्ज्वल हसी से चमकती रहती, भूरे रेशम की लच्छिया से वेश सामान्य हवा के झोंके से ही मनमोहक धीरे में चेहरे को बाध लेता, उसपर उसका आनन्दी स्वभाव पल भर के पाहुने का भी अटूट मैत्री के बदन में जकड़ लेता। पाँच मिनट के परिचय को भी वह पाँच वष का परिचय बना सकती थी। इतने वर्षों में भी उस कमनीय चेहरे का कैशिय नहीं गया है। जैसे कर्माचल का अस्ताचलगामी प्रौढ़ सूर्य, जाते जाते भी डबती किरणों का अद्भुत उज्ज्वल जाल बिछाता पवनश्रेणियों को अनोखी आभा से आलोकित कर जाता है, वैसे ही उससे विदा लेता यौवन बड़ी हठीली घण्टता से अडता, उस सुभावने चेहरे को और भी सुभावना बनाता चला गया था। मैं तो उसे देखकर दग रह गई थी। सामान्य गेहुआ रंग ऐसी दूधिया शुभ्रता में कैसे बदल गया? सुना तो यही था कि बस त और यौवन, पद्मपत्र के जलबिंदु से ही क्षण स्थायी हाते हैं—पर इन बीस वर्षों में पिरि क्या और भी सुन्दर नहीं बन गई है। वही बल जाती देह्यष्टि, मोटी काली चोटी उसी कोमार्यावस्था की अलङ्कृता से सामने झूल रही थी, कान के पास चंद्रमल्लिका का एक बड़ा सा पुष्प सचलाईट सा चमक रहा था, ठीक जैसे हवाई द्वीप की कोई लावण्यमयी घण्टा किशोरी विदशी पयटक के पार्श्व में कान में फूल खोसे बैठी, किसी एयर लाइंस का विज्ञापन बनी मुस्करा रही हो। क्या वह, लिखने में तो निविड ब्रीडा से लेखनी स्वयं सकुचित हो रही है, किन्तु मर्यादाहीन ओदाय से प्रदर्शित उस सुझील नगी पीठ पर आसपास पड़े कितने ही पयटकों की लोलुप दृष्टि गडत देख मैं लज्जा से गड़ गई। अविश्वास से मैं अतिम द्वार फिर दोनों को देखा—नहीं! देह के लिए सामान्य सी भी गुंजाइश नहीं। दोनों वही थे।

पर यह हो कैसे गया? गत वर्ष जिसके स्पश से सिहरकर, वह मेरे पास भाग आई थी और जिसके अप्रत्याशित प्रणय निवेदन की अद्भुत कहानी सुनान में बार बार भय से कापती सकलित दृष्टि से द्वार को ऐसे देखने लगती थी जैसे कही वह अचानक आकर खड़ा न हो गया हो, जिसकी मृत्युकामना के लिए उसने जायन देवी के वरदायी मंदिर में निरंतर तीन माह तक धृतदीप जलाया था जो कभी स्वयं अपनी मा के साथ, उसके सीमाग्न्य द्वार का पथ अवरोध कर, हठीला प्रहरी बन खड़ा हो गया था, क्या वह अत में उसीकी प्रणय-धोर से

सिखी चली गई ?

पिरी का नाम था हरिप्रिया, एक ऐसा प्रचलित नाम, जो सभी पहाड़ की हर तीसरी लड़की का हुमा करता था, पर पिरी हर तीसरी लड़की-सी साधारण नहीं थी। पायद यही कारण था कि वह सोलह वर्ष की भी नहीं हुई थी कि उसकी कुदली हाथा ही हाथा में तोली जाने लगी। पितामह मूंगफली बचत थे किंतु पिता ने बठोर दारिद्र्य को अपने चरित्रबल से दूर ठेलकर प्रतिष्ठा एक समृद्धि पाई थी, इसीसे वे बठोर मितव्ययी। लाग कहते थे, कि उनकी मितव्ययिता ही उनकी सरसा पत्नी की भवास मरु का कारण थी। जो भी हो, उनकी मितव्ययिता से हार मानन वाली पिरी नहीं थी, प्राय ही वह पिता के इधर-उधर छिपाए रेजगारी के स्तूप से, मुट्ठी भर चक्को घठनिया बटोरकर, अपनी काच के बटन से चमकती घाँघे चमकाती छत से हमारी पघरीली छत पर कूद जाती, "भभी भभी मोहनलाल निकलगा—तू मुला लेना, समझी, छक कर टिकिया खाएंगे।" मैं उसक दुसाहस को देखकर काप जाती, कही उसके पिता ने देख लिया तब ? फटी कमीज उल्टीकर, सब किस छत के परपर पर जमा बूढ़ा जुए बीनना छोड़, हमारी चोटी पकड़कर घसीट लेगा—क्या कुछ ठीक था ? पर सध्या डलती और भीठे गल की सुरीली हाक से मोहनलाल न जाने कितनी विशोरिया की चटारी जिह्वाभा की भामनित कर देता, 'पोटेटो की टिकिया डबल में एक।'

मोहनलाल को भला तब भलमोड़ा की बौन बिसारी नहीं जानती थी ? भपेड चेहरा, स्वाहरग और सीक सी अगुलियो में गजब की कुर्नी, पतले, तबे पर सिक्ती गुलाबी भालू की टिकिया, चुटकिया से छिड़का गया मसाला और खट्टी-मिट्टी चटनी डाल बनाई गई भमूत बूटी ? वैसा भदभूत व्यक्ति था वह ! रामलीला में बनता था केवट और उसी चोपाई के लहजे में जब मोठी हाक लगाता— "पोटेटो की टिकिया—डबल में एक," तो एक से एक संनातनी महिलाएँ भी टिकिया खाने पिछवाड़े का द्वार खोल लती, "रामचन्द्र जी का केवट है, भला उसके हाथ की टिकिया खाने में कैसा दोष ?" निपुणिका पुत्री कब कितनी रेजगारी पारकर लेती है, पिता को पता भी नहीं रहता।

पहली बार सुदरी पुत्री की कुदली मांगी गई तो बेचारे बड़े उत्साह से मृत पत्नी के हरिण के चमड़े से मड़े जीण पिटारे से कुदली निकाल चटपट दे आए थे। उसी सध्या को खोटे सिक्के से कुदली लौट आई तो उनका माया ठनका। देने वाली ने तो यह कहकर लौटा दी था कि कया के तीन ग्रह लडके से बड़े हैं, पर भलमोड़ा भर की कुदलियो की रेखाओं का लखा जोखा रखने वाले भट्टजी ने कुदली का भेद खाल दिया, "जहा जहा पात्र से बड़ा भाई होगा वहा-वहा से कुदली ऐस ही लौट आएगी पतजी, कया का जेष्ठा नक्षत्र है।"

मूर्खा पत्नी पर मन ही मन उह क्रोध भी आया था, क्या मरने से पहले किसी-को कुडली दिखा नहीं सकती थी अभागी ? उहे पहले पता होता तो दस पाच रुपया देकर भट्टजी से ही दुष्ट ग्रह को मटियामेट करा देते, उनके पुत्र अभी ने क्या पुत्री का अष्टम मंगल, भट्टजी के दक्ष स्याहीमेट रबर से नहीं मेट दिया ? पर दूसरा बटु सत्य अचानक पतजी को भी अगुठा दिखाने लगा—क्या कर लिया था कया की कुडली में जालसाजी करके ? क्या भाग्य का लिखा ग्रह भी मिटा सके थे उत्कोच से ? विवाह के तीसरे ही महीने पुत्री विधवा हो गई थी । फिर उहाने बड़ चातुय से कुडली प्रवासी बिरादरी में भेजी, पर पिरी का ज्येष्ठा नक्षत्र, फन उठाए डसने को तत्पर घातक पदमनाग सा ही भावी पति के ज्येष्ठ भाई की ओर जो भलपलपाता दौड़ पड़ता और एक न एक बहाना बनाकर कुडली फेर दी जाती । फिर ऐसी बात क्या छिपाए छिपती है ? कुम्भीचल के कमवाडी परिवार तो विवाह योग्य व याग्यो के मंगल, ज्येष्ठ, अश्लेषा नक्षत्र कठस्थ रखते हैं और अवसर पाते ही अपनी विवाह योग्य कयाग्यो की सुल्ल लगाने में नहीं चूकते । इसी बीच, अचानक पिरी को कुछ क्षणों के लिए बृह स्पति की दशा आ गई ।

हमारे मकान से लगा मकान था पिरी के पिता का, और उससे नये दुमजिले मकान में पाडे जी रहते थे । उनका ज्येष्ठ पुत्र राजेश, यहाँ पूव, हाईस्कूल की परीक्षा में नकल करते पकड़े जाने पर लज्जा से गृह त्यागकर अदृश्य हो गया था । तब का विद्यार्थी, क्या आज के विद्यार्थी सा दुसाहसी था जो पकड़ने वाले गुरुजनों का पैट फाड़, परीक्षा भवन में ही उनकी भातें फला देता या कलेजा फाड़कर फेफड़े ? पकड़े जाने पर, तब का सस्कारशील किशोर या तो ताल तलैया में कूदकर स्वयं को दण्ड दे लेता या गृहत्यागी बन, देश विदेश में अलख जगाए घूमता रहता । धीरे धीरे पद्म वप बीत गए, इसी बीच काशी के प्रसिद्ध तान्त्रिक, पाडेजी के अतिथि बनकर आए । एकदम पहुंचे सिद्ध, अलखरोट के वक्ष क नीचे घूनी रमा ली और देखत ही देखते, पहाड़ की धमभीरु सज्ज विश्वासी भीड़ ने घेर लिया । कैसे ही विषम प्रश्न पूछो, चट उत्तर दे देत । पाडेजी ने भी गृहत्यागी पुत्र के लिए गुप्त प्रश्न किया उत्तर मिला—“तुम्हारा पुत्र दक्षिण दिशा में जाकर एक जहाज में बैठा था, जहाज डूब गया, मृत्यु का सकेत स्पष्ट है ।” कमकाडी पाडेजी न चटपट कुक्ष का पुतला बनाया और गतित्रिया बर दी । मा जिस पुत्र का चेहरा भी भूलने लगी थी, उसी व लिए छाती पीट पीट कर ऐसे विलाप करने लगी जैसे लाख अभी आगन में घरी हो । राजेश की काल्पनिक मृत्यु की तेरहवी के दूसरे ही दिन, गृह के दूसरे पुत्र देवेश व लिए, पिरी की कुडली लेकर पतजी पहुंच गए । पिरी को सबने देखा था पर भावी सास को आपत्ति थी । ऐसी रूपवती बहू के सो नखरे भला यह कम सहेंगे

फिर उसकी बहन की तीन तीन रुपवती बटुए उसे सबक सिखा चुकी थी—तीनो वहनीत, रुपवती पत्तियों के गुलाम बनकर रह गए थे।

“वहू के रूप को क्या मैं चाटूंगी ?” उसने तुनककर कहा था, “मुझे तो गुण चाहिए गुण !”

पर पाडेजी ने मूर्ख पत्नी को मना लिया, “कैसी बात करती है, भवखी चूस की एक ही लडकी है, आखिर कितने दिन जाएगा ? सब सम्पत्ति हमारे देवू को मिलेगी”—बस घटपट मगती हो गई थी।

पर किसी शक्तिशाली कीलक गाड़कर पल भर में अवश बना दिए गए ग्रह ने फिर करघट बदसी। विवाह के आठ दिन रह गए थे। पिरी की प्रसन्नता आकाश छू रही थी। छूती भी क्यों नहीं ? देवू सा सजीला तरुण मुहल्ले टोले में दूढ़ने पर भी नहीं मिल सकता था, बचपन से ही वह पिरी को परी-परी कह कर बिठाता था और एक बार जब मुहल्ले के रिश्ते से हम सब पड़ोस की लड़कियाँ उसे भाई दूज का टीका लगाने पहुँची तो उसने हसकर कहा था, “सबसे रोली का तिलक लगवा लगा पर इस परी से नहीं—इसे मैं क्या कभी बहन कह सकता हूँ।”

“हाय हाय, वैसा बेहया है ये देवूदा। खूब जा, अभी कहती हूँ चाची से” पिरी बनावटी रोप से कहती बिना तिलक किए ही लौट आई थी। उस दिन से हम नित्य छेड़ती रहती, ‘ए परी, जान, तेरी ससुराल के दाड़िम में खूब फल आया है। ले आ ना आचल भरकर।’

“और क्या, बुढ़िया मुझे वही जीता गाड़ दगी !”

“बुढ़िया का बेटा तो नहीं गाड़ेगा अपनी परी को।”

“इतना मैं तुम्हें लिखकर दे सकती हूँ” वह मुझसे कहती और उसकी सदा बहार भावों डबडबा आती, ‘बुढ़िया मुझे कभी बहू नहीं बनने देगी।’

पर जब एक दिन सुना कि सचमुच ही पिरी की सगाई वहीं हो रही है जहाँ वह चाहती थी तो मैं प्रसन्नता से उछल पड़ी और उसी विवाहोत्सव के लिए, परीक्षा से पहले छुट्टी लेकर घर आ गई। आसन्न विवाह तिथि ने पिरी को सचमुच ही परी बना दिया। उसका वैसा रूप, फिर मैंने कभी नहीं देखा। एक तो उसने कभी पहाड़ की देहरी नहीं लाची थी, इसी स गालों की पहाड़ी सेवों की कुमारी लालिमा, आसों की निर्दोष चावनी, स्वच्छ दत्तपत्र और स्वस्थ गुदगुदी देह में कुमायू की धन लक्ष्मी का सरल सौंदर्य साकार हो उठा था। उधर प्रेम ज्वर सनिपात की अग्निम अवस्था में पहुँच चुका था, हृदय के उल्लास ने उसे और भी उदार बना दिया था। महाप्रोदाय से वह दायें बायें अपनी प्रसन्नता का सीमित भंडार सुटाए दे रही थी।

बात-बात पर हृदय सुमाने वाली हसी, पदचाप से ही मुनिया का तपोभग

६४ □ मेरी प्रिय कहानियाँ

उसके पिता पत्र हाथ में लिए और चले गये। पत्र को अत्येष्टि का प्रायश्चित्त करने, सपरिवार कर भागते गए और उल्टे पैरों जिस भ्रमानवीय घेरे से बस्ता उठाकर वह कॉलेज भ्रमण ही कर दी गईं जीवित प्रदम रह गई थी। एक दिन पहल बात बात पर गया चले गए थे। तीसरे ही दिन ही हसी, पहाड़ के क्षणिक सूर्यालोक-सी ही आकर चली गई, उसे देखकर हम सब पम मेघखंडो ने निमल उत्फुल्ल चंद्रबिंब को ग्रस रसीले अधरो पर उतर आने वाले कुडली छीनकर उसने एक दिन जलते चूल्हे में फिर बिलीन हो गई थी। घन विचरकीमाय व्रत की घोषणा कर दी।

पिता के हाथों से देवेश को शायद जान-बूझकर ही ताऊ के पास भोकर दी और कठोर स्वर में, फिर उसके इसी पलायन से पिरी बोलला गई।

पांडे परिवार लौट आया पंडी हुई तो देखा, दूसरी छत पर कोई खड़ा है। इलाहाबाद भेज दिया गया, और उत्साह से मुस्कराती आगे बढ़ी और फिर दो एक दिन वह अपनी छत पर खड़ी रही, उसका बड़ा भाई राजेश था, वही जिसने तब क्या देखा लौट आया? वह एक आठवें दिन से एक दिन पहले आकर उसके कदम पीछे हट गई—वह देखा र दिए थे। वह घण्टा युवक, उसे निलज्जता से उसके बहुप्रतीक्षित विवाह के ठीक चढ़ आया और देखते ही देखते, दोनों छानो समस्त स्वर्णिम स्वप्न चूर-चूर की को पकड़ता, किसी ट्रेपीज के दक्ष कलाकार घूरता, मुस्कराता सहसा मुंडेर में कूदकर खड़ा हो गया।

को घेरे अलखोट की पुष्ट डालिह स्तब्ध रह गई पर दूसरे ही क्षण उसकी आवाज की भांति उसके पास ही घम्म से लपटें भड़क उठी, जहां पंद्रह वष सिगापुर में

उसका दुःसाहस देखकर पिरी रहे सकते थे?" वह क्रोध से धर धर काप से घुणा, तिरस्कार और क्रोध के वेहया का एक एक नैन नक्ष अपने सुवशन रहे वहां क्या आठ दिन और नतीर की गडन में। जहां छोटा भाई, बचपन में रही थी। नहीं।" उस निलज्ज करते, चेष्टा करने पर भी वास्तविक जीवन भाई का था, अंतर था केवल सीता के मुदीष अभिनय ने स्त्री सुलभ शील मुकुमारी सीता का अभिनय कर, उसके चेहरे की एक बाल सुलभ जिज्ञासा में कभी राम नहीं बन पाया, राम प्राकषक बना दिया था, वहां बड़ भाई की घनी सौजन्य के अमिट अक्षर लिख, हृदय का अस्तित्व ही मिटकर रह गया था, 'आप का साकार रूप दे, अदभुत रूप से अकत कि यह सब कुडली का ढकोसला आप कप्तानी मूछों के नीचे, रसीले अधरों के पिता को कोई आपत्ति नहीं है।' क्या अपनी मा को नहीं समझा कि वह अपना यह प्रश्न पूछने के साथ ही, नहीं मानते? मैं जानती हू कि अ

पिरी ने बाद में मुझे बतलाया," दृढ़ स्वर में उसने कहा और फिर बड़ी उसीके सामने रो पड़ी थी।

"मेरी मा कभी नहीं मानेगी

उदासीनता से जेब से सिगरेट निकालकर जलाने लगा, 'अब एक ही उपाय है जो तुम्हें आज्ञा के अनावश्यक कौमार्थ्य-व्रत से बचा सकता है।' उसका स्वर गम्भीर था, लग रहा था इस बार वह सचमुच ही उसकी हसी नहीं उड़ा रहा है।

"क्या?" पिरी शायद दो कदम आगे बढ़ भी गई होगी, उस चंचल किशोरी को मैं खूब जानती थी। आकस्मिक उत्तेजना से उसकी बोटी बोटी फड़क उठती थी। "यहो कि तुम मुझसे विवाह कर लो" और वह अपनी उसी घष्ट मुद्रा में खड़ा हसन लगा।

पिरी का गुस्सा हमेशा उसकी नाक पर बैठा रहता था, उसके मर्यादाहीन प्रतिक्रिया की प्रस्ताव से उसका सर चकरा गया।

"मैंने उसे खींचकर ऐसा तमाचा मारा कि चूड़िया टूटकर, दूर तक भनभना गई, फिर मैं पागलों की तरह सीढ़ियां पाद गई।" पिरी ने मुझे लिखा था। इसके बाद वह उस छत पर कभी नहीं गई।

धीरे धीरे उसकी सब मौसेरी फुफेरी बहनो के विवाह हो गए। समय बीतने पर सब मा बनी, फिर लड़कों की मूर्छें निकल आई, लड़कियों के विवाह हो गए और पिरी की हमजोलिया, प्रौढ़ा बन पान तम्बाकू गुलगुलाती अपने मेढबहुल शरीर पर चर्बी की सहो पर सहे बिछाती पास पड़ोस में हाथ नचा, भाखें मटका बैसी ही निरर्थक बातों की गद्दी पोटलिया खोलने लगी, जसी उनकी मा, चाची और ताईया खोला करती थी। किसकी लड़की किमके साथ भाग गई, किसकी बहू ने सास के साथ दुर्व्यवहार किया किस सास ने नई बहू को उसके दहज का एक लोटा भी नहीं दिया आदि आदि।

पर पिरी को छूने में, जीवन का प्रौढ़ दस्यु भी जैसे सहमकर दो कदम पीछे हट गया था। वह मेडिकल कालिज से छुट्टियों में लौटती भी तो अपने ही कमरे में बंद रहती। एक बार संध्या को वह अकेली मंदिर से लौट रही थी कि उसकी टक्कर भूले बिसरे प्रणवी से हो गई। मान अभिमान के कई रसीले प्रकरणों के पश्चात प्रधूरे उपाख्यान की नवीन सृष्टि हुई। इन्हीं दिनों मैं भी पहाड़ी गई थी।

पिरी से अचानक भेंट हो गई, जाखनदेवी के मंदिर में, हाथ में धूपदीप लिए वह देवी के सम्मुख नतमुखी खड़ी थी।

'किसके लिए जला रही है आज यह?' मैंने हसकर उसके कंधे पर हाथ धरा और वह चौंककर मुड़ी।

मंदिर की टूटी सीढ़ियां पर बैठकर, फिर मैंने उसके साहसी प्रेमी की एक एक भोष्म प्रतिज्ञा सुनी।

'वह कहता है, विवाह करेगा तो मुझीमे या जीवन भर कुंवारा रहेगा। उसके पिता तो पिछले साल नहीं रहे, तू सुन ही चुकी है, पर बुढ़िया का जैसा स्वास्थ्य है शायद दो सौ साल की होकर भी नहीं टलेगी। और वह ससुर

जेठ बहादुर नेपाल में ठेकेदारी कर रहे हैं। सुना, ठीकरा भी उठाते हैं तो सोना बन जाता है। बुढ़िया ने बहुत टेसुवे बहाए पर वह भी कहता है—कुंवारा ही रहेगा। उसीके लिए तो जलाती हूँ दीया।” वह हसने लगी थी। उस मंदिर में जलाए गए घृत की महिमा भला कौन नहीं जानता था।

बहुत पहले, एक प्रणयो-मत्ता किशोरी ने वहीं दीया जलाया था। जिस घर की कामना हेतु वह प्रदीप लेकर, नित्य संध्या को पहुंचती थी उसका एक दिन कहीं बिवाह भी हो गया, पर किशोरी का था देवी पर अगाध विश्वास। वह नियमपूर्वक प्रदीप जलाती रही। एक दिन किसीने शामद छेड़ भी दिया, अब क्या करेगी दीया जलाकर—देवी तुझपर प्रसन्न नहीं हुई।

देवी प्रसन्न नहीं हुई। जिसे उसने मन ही मन वरा था, वही उसका पति बना। नई बहू तीसरे ही महीने गोलोकवासिनी हो गई थी, दूसरा बिवाह हुआ उसी किशोरी से।

‘तू किस सौत की मत्युकामना करने को दीया जला रही है।” मैंने पूछा।
‘क्यों?’ अवोध शिशु सी आँखों में था अगाध विश्वास, ‘मेरी सौत कौन है, तू नहीं जानती? मेरा जेठ’

मैं कांप गई थी।

“छि छि—ऐसा मत कर पिरी।” मेरे कहने से क्या पिरी रुकती?

मंदिर में नित्य घी का दीया जलने लगा—फिर भी देवी प्रसन्न नहीं हुई। दोनों दशनीय कुंवारे भाइयों की राम लक्ष्मण की सी जोड़ी, कन्यादायप्रस्त माता पिताओं की छाती पर भूय दलती रही। धीरे-धीरे माताओं की कुठा पिरी के प्रति गहरे आश्रय में, क्षतमुखी कुत्सा बन, कुटिल प्रचार करने लगी।

“देखती नहीं दाया पैर बढ़ाकर चलती है।”

“ठीक कहती हो चाची बल मेरे घर की गली से होकर, अस्पताल जा रही थी, मेरी कढ़ाई में तेल जल रहा था चट से इसने नाक पर रुमाल धर लिया। मैं कहती हूँ सारा दोष बुढ़िया का है, भरे दिन दहाड़े जो यह डाक्टरनी उसके घेरे के साथ मुहवाला किए फिर रही है उससे अच्छा यह नहीं है कि इस बहू बना ले? चाल ढाल से तो यही लगता है कि कम से कम पाचवां महीना है।”

एक दिन मैंने सुना और सन्न रह गई। क्या पता बचारी पिरी को पता भी न था कि समाज को उसने किस हद तक अपना घातक धातु बना लिया है।

मैंने जब उससे यह सब कही तो वह हसने लगी, “मूल औरतें—इतना भी नहीं समझती? मैं परिवार नियोजन केन्द्र में काम करती हूँ—जो जिरह बस्तर इन्हें पहना चुकी हूँ वह क्या स्वयं नहीं पहन सकती?

तब क्या सचमुच पिरी उसकायर व्यक्ति की मिस्ट्रेस बनकर रहन लगी थी?

“यू धार दोमत्स पिरी,” मैंने उसे छपट दिया था, “जब उस व्यक्ति में

इतना भी साहस नहीं है कि वह तुमसे विवाह कर ले, तब वह जिस जिले में तेरी बदली होती है वही क्यों भागता है, क्यों तुम्हें बदनाम करता फिरता है ?”

‘इसलिए कि वह मेरे बिना जी नहीं सकता और अपनी खूँसे में से बेहद डरता है। कहती है, उसने यदि मुझसे विवाह किया तो वह ताल में कूद पड़ेगी, पर हम दोनों के मिलने पर अब विधाता भी प्रतिबंध नहीं लगा सकता। समझी ?’

यही नास्तिक पिररी के स्वभाव का सबसे बड़ा दुर्गुण था, बात बात पर विधाता को ही गई चुनौती और स्वयं अपने अहंकारी स्वभाव पर अटूट आस्था। इसी बीच पिररी का तबादला हमीरपुर को हो गया, उधर उसके प्रेमी मुसिफ देवेश पांडे न भी बड़ी चेष्टा से अपनी बदली वही करवा ली। इस बार पुत्र को लौटो करने में नहीं जा पाई। बड़ा पुत्र सन्निपात ज्वर से ग्रस्त हो, नेपाल से स्वदेश आ गया था।

‘लगता है इस बार मेरा ज्येष्ठा नक्षत्र रंग पकड़ रहा है,’ पिररी ने मुझे उस बार लिखा था, ‘लाख हो, फेरे फिरने से ही क्या सप्तपदी संपूर्ण होती है ? चाहने पर, मैं अब अपने विवाह की रजत जयंती मना सकती हूँ। सपनों के चादुन से अपने को न साधा होता तो शायद मैं भी तेरी तरह दो कयादान निबटा चुकी होती। जेठ बहादुर की अवस्था बहुत सुविधा की नहीं है, सन्निपात का चौथा हफ्ता ही सबसे खतरनाक होता है और उसीमें भूल रहे हैं जेठ जी।’

मैंने उसे डपटकर चिट्ठी लिखी थी, ‘ऐसी चिट्ठियाँ मुझे मत लिखना, भगवान से तो डर।’

खुले कांड में उस नास्तिक का एक पवित्र का नगा साँप आया था—“तरे भगवान की ऐसी-तैसी।”

अब तब नादान बालिका ने से प्रलाप को सुनी अनसुनी करने वाला धीरमति विधाता भी शायद उस बार बीखला गया।

उसी दैवी पादप्रहार से लहलहाकर पिररी ऐसी गिरी, नि विमूढ़ विपन्न बनी, किसी अनजान घरातल में घसती सहसा अदृश्य हो गई।

बड़े भाई को देखने गया छोटा भाई, जब लौटा तो सन्निपात का विषघर उस भी डस चुका था।

पिररी की सेवा, सन्निपात की आधुनिकतम सजीवनी, जिससे आजकल एक साधारण कम्पाउंडर भी इस विषम ज्वर को जीत लेता है उसे नहीं बता सकी।

उसकी मृत्यु के पश्चात् पिररी कहा गई अब गई—कोई भी नहीं जान पाया। लम्बी छुट्टी की एक घरजी देकर वह जैसे एक ही रात में पर उगावर किसी अनजान निगा में उड़ती अदृश्य हो गई थी।

गत वषट्क भ्रमणक घूमने-सी ही वह बूमचल के गगागा म एक बार

फिर चमक उठी। सफेद साड़ी रिक्त ब्लाइया, बिंदीविहीन वैधव्य दग्ध ललाट और वेदना विधुर सूखा चेहरा लिए, वह अपने श्वसुर गृह की साकल खटखटाने, बिना किसी पूर्व सूचना के ही पहुंच गई थी।

उसी श्वसुर गृह में, जहां कल्पना लोक की पालकी उस नवोढा को गुलेनारी रंग बाल दुपट्टे से ढाप ढूँष न जान कितनी बार पहुंचा भाई थी जहां उस किशोरी के कौमार्यावस्था के सहस्र दिवास्वप्न, एक साथ ही, हाथ से छूट गई ट्रे पर घर बाच के पात्रों की ही भांति टूटकर चकनाचूर हो गए थे, जहां कल्पना ने उसे नवेली बहू बनाकर खड़ा किया था, वहां ठोस यथाथ के घरातल पर, वह खड़ी थी विधवा के वेश में। जो विवाह न होने पर भी सघवा थी वह आज अग्नि साक्षी न होने पर भी विधवा थी। उसने फिर साकल खटखटाई।

द्वार सास ने नहीं खोला। खोसा उसके बड़े पुत्र ने। पल भर को वह चीख ही पड़ी थी। उसके सम्मुख जस सतिपात ज्वर से रोगमुक्त हो उसका स्वस्थ प्रेमी ही खड़ा था—वैसी ही स्निग्धतरल बादाभी भालें, और रामलीला की सीता की सुकुमार हसी। शायद भूछें मुड़ा ली थी, उसीसे शकल छोटे भाई से इतनी मिलने लगी थी।

“भाइए,” उसने कहा और सहमी पिरी उसके पीछे पीछे चली गई थी। पिरी ने डरत डरत ही पूछा था, “आपकी मा क्या यही होगी? आपके भाई का सामान” और उसका गला रुध गया था। बद पिढकी बद द्वार भयावह घघकागपूण विचित्र सीलन भरा कमरा। उसका कापते कठस्वर को सयत होने का समय देन ही, शायद वह बड़ी समझनारी से अपने भीतर के कमर में चला गया। थोड़ी ही दूर में लौटा तो हाथ में गम चाय का प्याला था “लीजिए, आप पत्रले चाय पीजिए। डाक्टरनिया तो सुना बहुत चाय पीती हैं—क्या है ना?” वह फिर हसा—और इस बार पिरी का चेहरा एकदम पक पड़ गया, हाथ कापकर चाय, शायद कुछ छलक भी गई। कहीं इसके छोटे भाई का प्रेत ही तो परकाय प्रवेश कर, उसे छलने नहीं आ गया?

एकदम वसी ही हसी, और पतली नाक पर पढती हूबहू वैसी ही झुरियां।

“अपनी मा को बुला सकेंगे क्या? मुझे इसी बस में ननीताल जाना है” पिरी ने अर्धय स अपनी घड़ी देखी, “आपके भाई की पासबुक, भगूठी और बक्सा मेरे पास था, साचा पहाड़ जा रही हू तो अपने हाथ से आपके मा को सौंपूंगी।” गला पल भर को फिर रुध गया पर दूसरे ही क्षण बड़ी स्वाभाविकता से कठस्वर बसा ही रोबीला बना लिया, जिसमें वह मृतप्राय रोगिणिया के मृग अभिभावक की गमय रहते उन्हें अस्पताल न साने के लिए डांटा करती थी, “मेरे पास फिजूल का समय नहीं।—उन्हें जरा जल्दी बुला देंगे क्या?”

“बुला तो अवश्य देता,” इस बार उसके प्रेमी का पठान सा ऊचा घगला

है ?”

“तू क्या सचगुच इसे पहनेगी ?” उसने पूछा और पल भर को मुझे लगा कि उसकी ईर्ष्याकातर सोलुप दृष्टि में याचना मुखर हो उठी है ?

“और नहीं तो क्या ! वेश्या के गले का मूंगा क्या सहज ही म जुटता है ?”

मैंने पुडिया में बंद मूंगा, कलमदान में सहज दिया ।

तीसरे दिन पिरी चली गई । उसी दिन घर का सुनार आया । अपने मंगल सूत्र के बीच मूंगा गुथवाने, मैंने कलमदान खोला तो बलेजा धक स रह गया । पुडिया के बीच से मूंगा जादुई वज्रबट्ट सा अदृश्य हो चुका था ।

पल भर में, मेरे अविश्वेकी चित्त ने चट से चुगली खाई—वही ले गई है वेश्या का मूंगा क्या सहज में जुटता है ?

छि ! कसी नीच थी मैं ! जो तीन दिन रहकर, मुझे तीन सौ का समान दे गई थी वह भला कीड़े का घुना वाले पड़ गए घुने दात सा मलिन मूंगा चुराएगी ?

और भला, अब किस सीमाय की आकांक्षा हो सकती थी उसे ?

पर अंतरात्मा भी पुलिस के कुत्ते की भांति अपराधी को सूंघकर कभी ठीक ही पकड़ती है ।

अपनी आंखों से ही तो मूंगे की महिमा देख आई हूँ । शायद इसीलिए वह नैनीताल आकर भी मुझमें मिलन नहीं आई—जिस मूंगे के सूत्र से उसने अचानक नवीन सीमाय दस्तु को पकड़ा था, उसे मैं पहचानने पर, वही खुलवा न लूँ । मुझ एक ही शक्ता रह रहकर चिंतातुर बना उठती है—पूवत्वामिनी के कठहार का यह मूंगा वही पिरी के सीमत सिद्धर को भी धारवनिता के सिद्धर सा ही क्षणस्थायी बना दे ।

शपथ

पीछे से आकर, उसने धीरे से मेरे कंधे पर हाथ धरा और मैं चौंककर मुड़ी। एक पल के लिए मैं उसे देखती ही रही। मैं कुछ कहती, इससे पहले ही वह हसी, "बाह जी बाह, हमने तो तुम्हारी पीठ देखकर ही पहचान लिया और तुम हमारा चेहरा देखकर भी नहीं पहचान पाइ?"

"ओह शुभ्रा, पर बितनी बदल गईं हैं तुम!" मैंने कहा।

वह क्या बीस वर्ष पूर्व की शुभ्रा थी! तब का गोल गोल आनदी चेहरा लबोतरा होकर और भी आकर्षक बन गया था। सुघड जूड़े में मण्डित घने केश पाश की गरिमा भीण होने से ही संभवतः उन्हें काट छाटकर यस्तन से टीज कर दिया गया था। उन अघरा की स्वाभाविक लालिमा को, मैंने बहुत निकट से देखा था। उन्हें निरंतर रगकर ही क्या स्वामिनी ने ऐसा घूमिल बना दिया था। सूखे पपड़ी पडे बलात अघरो पर अगस्त न स्मित की रेखा सहसा उज्ज्वल हो उठी।

"यह बड़ी भीड है। चल न, कार में चलकर बैठें।" और मैं कुछ कहती इससे पूर्व वह मुझे अनजाने कारो की पश्चिम में भी विशिष्ट रूप से चमकती अपनी वाली लंबी गाड़ी में खींच ले गई।

"मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि तू यहां मिल जाएगी।" कार की हल्की रोशनी जलाकर वह मुझसे सट गई।

अपनी क्षीण वटि के कौमाय को, वह निश्चय ही मुट्ठी में बांधकर सेंटती भाई थी, पर फिगर को जकड़े रहने पर भी संस्कृति, जैसे उसकी पकड़ से छूट कर बहुत दूर छिटक गई थी। पट्टी से ब्लाउज पर, बड़ी उदासीनता से पड़ा उसकी पारदर्शी साडी का आचल, अंगुलिया पर हीर की वस्तु लाकार जगमगाती अंगूठी से उज्ज्वल हो उठी निकोटीन के इतिहास की निलज्ज बालिमा, और आन्ध्र के नीचे रात्रिजागरण से उभरी वाली भाइ, जिसे उसका मस्करा कौशल भी नहीं छिपा सका था।

"आखिरी बार हम कब मिले थे?" उसने पूछा।

"बीस वर्ष पूर्व।" मैंने कहा, "जब तूने हमारी वाहन को अपने प्रपूर्व अभिनय से पसीना-पसीना कर दिया था।"

वह जोर से हसी और उसी परिचित हास्यधारा ने हम दोनों के भूले बिसर

कैशोय को लीचकर एक बार फिर सामने खड़ा कर दिया।

शुभा हमारे होस्टल की सबसे मानदी लड़की थी। उसके परिहास रसिक चित्त ने उसे पूर आश्रम का योज बना दिया था। ऐसे ऐसे मजाक करेगी कि सब हसत हसत दुहरे हो जाएंगे पर स्वयं ऐसी मूरत गाए बैठ जाएगी, जैसे कुछ जानती ही न हो।

उस पहली अप्रैल की पूरे छात्रावास में हवा की भांति यह समाचार फल गया था कि सुन्दर शुभा को गदनतोड़ ज्वर हो गया है। दो ही दिन पूर इसी विषम ज्वर ने छात्रावास की एक प्रतिभाशालिनी छात्रा के प्राण लिए थे। प्राणातक सिरदद में इधर उधर सिर पटगती जूथी दी ही की भांति शुभा भी तडपती, सिर फँकती, दम तोड़ने लगी थी। उसके उस परिहास का रहस्य सीमित था, बसल हम दोनों तक। बँसी सागर, ज मजात अभिनत्री थी वह। जब हम शांत जूथी दी की मृत्युशय्या के पास विवश खड़ी सिसक रही थी तब क्या वह अभागी तीन दिन बाद के अभिनय का मूक रहस्यल कठस्य कर रही होगी। जब वाइन उसके घर का तार करन भागी, तभी वह हसती हसती उठ बैठी थी।

दूसरे ही दिन मैं अपने पिता की बीमारी का तार पाकर चली गई और फिर कभी उससे नहीं मिल पाई। बीच-बीच में वह पत्र लिखती रहती और उसके पत्रों की भी उमकी भांति बोटी बोटी फड़कती थी। उसीके एक पत्र ने मुझे उसके विवाह का समाचार भी दिया था। उसके समस्त प्रतिवशी परिवार की बड़ी बहू कालिंदी ने ही विविन्न परिस्थितियाँ में उसे अपने उस छोटे देवर के लिए पसंद कर लिया था, जिसके लिए बहुत बड़े बड़े परिवारों से रिश्त चल आ रहे थे।

“अपना साहब की हवेली के अमरुदों की प्रसिद्धि दूर दूर तक थी” उसने लिखा था, किंतु उस बगिया के अमरुदों से भीठा उस गह का छोटा पुत्र है, यह मैं खूब अच्छी तरह जानती थी, पर जिन अमरुदों का विवश हो बाद में खट्टा कहना पड़े उनपर लपकने की मुखता भला मैं कभी क्यों करती? मैं जानती थी कि मैं एक अध्यापक की पुत्री हूँ। अपना साहब की बड़ी बहू कालिंदी थी स्वयं एक प्रतिष्ठित परिवार की कया और मझली बहू के पिता थे—चीफ जस्टिस। तब तू ही बता मेरी क्या बिसात थी जो उस गह की बहू बनने के सपने देखती? मैं तुझे विश्वास दिलाती हूँ कि मैं केवल अमरुद चुराने ही गई थी उस गह के पुत्र को चुराने की बदनीयत से नहीं। मैं जानती थी कि सास स्वमुरविहीन उस विराट साआज्य की एकछत्र स्वामिनी कालिंदी भाभी प्रत्यत उग्र स्वभाव की हैं और उन अलभ्य किसी विशोरी के से गुलाबी गालों वाले

इलाहाबादी अमरूदों का एक एक बेटा उ हीके हाथों सवरा सजा है। यही नहीं, एक एक दाने पर उनकी सील लगी रहनी है। और पक्के पर अपने ही ऊँचे तबके के इष्टमित्रों के यहाँ वे गिन गिनकर डालिया भेजती हैं। वह भी ऐसे, जैसे अमरूद नहीं, अर्शिया लुट रही है। सोमवार को वे नित्य घाठ बजे, अपनी देवरानी मालिनी को लेकर गृह के इष्ट शिव क पूजन हो जाती है, यह मैं जानता था। मालो खाट पर वेसुध पड़ा सो रहा था, यह भी मैंने अपनी खिड़की से देख लिया था। लास गुलाबी फलों से लदे पड़ की ढाल मैंने लपककर खींची और मन भरके अमरूद खाए। आधा अमरूद कुतरती मैं अपने पैर में चुभ गए काटे को निकाल ही रही थी कि कालिन्दी भाभी अपने पति दोनों देवर और देवरानी के साथ कार से उतर सीधी मेरे सामने खड़ी हो गई।

“अब समझ में आया कि दस नंबर के पेड के सगह जाने उस दिन कौन ले गया। यही बाबूराव मास्टर की भुलमरी कगली रही होगी।”

“मेरे जी में आया मैं उसी क्षण उस अहकारी महिला के पढ़ावर परिधानों को चीरकर धड़िया उड़ा दूँ। यह ठीक था कि मेरे पिता अध्यापक थे किन्तु उन तीन सुदृष्ट पुरुषों के सम्मुख मेरे दरिद्र कुस की ऐसी निलज्ज व्याख्या करने का उन्हें क्या अधिकार था भला।

‘बता छोकरा तू अमरूद चुराने यहाँ आई क्यों?’ कालिन्दी भाभी तनकर खड़ी हो गई।

“क्योंकि ऐसे मोठे अमरूद और किसीकी बगिया में नहीं हैं।” मैंने कहा और उनके रोबदार तमतमाए चेहरे की बड़ी अवस्था की दृष्टि से देवती में हसने लगी।

“मेरे इस अभद्र प्रहार से बेचारी तिलमिला गई। मुझे मारने को ही शायद उनकी पुष्ट भुजा हवा में उठी थी कि पीछे खड़े उनके पति ने अपनी दृष्टा चामुड़ा को घाम दिया, ‘आहा जाने भी दो कालिन्दी इतने अमरूद तो लगे हैं, एक साथ खा भी लिया तो बोन सा अर्रेर हो गया।’ मैं खुपचाप खिसक आई, पर पता नहीं कालिन्दी भाभी ने कैसा शाप दिया कि उसी रात को मुझे तेज ज्वर आ गया। पाचवें दिन भी जब ज्वर नहीं उतरा तो पिताजी मुझ मोसी के पास बरेली पहुँचा आए। यही मुझे एक दिन कालिन्दी भाभी का मधुर प्रस्ताव दूसरे सनिपात ज्वर की उड़ोनी में खींच ले गया। इसी अठारह अप्रैल को मेरा विवाह है तू आएंगी न?”

पर शुभा के विवाह में मैं जा नहीं सकी। धीरे धीरे उसके पत्र भी आने बंद हो गए। स्वसुर गृह की प्रभुता के मद ने ही शायद उसे विस्मृति के अधकारपूर्ण कक्ष में मूढ़ दिया था।

भीर प्रचानक यह इतने वर्षों बाद यहाँ मिल गई ।

“क्यों दुध्रा ” मैंने पूछा, “अब भी पहली अप्रैल को अपने विलक्षण परिहास रसिक चिन्त का परिचय ससुराल बासा को देती है क्या ?”

एकाएक उसका चेहरा फट पड़ गया । सनपकावर उसने इधर-उधर देखा फिर जोर से हाथ पकड़ लिया । उन सुन्दर धायत तयनों की सजल स्निग्धता, सहसा दो बूद वन मेरे हाथों की मिगी गई ।

‘सरसे बहा मज्जाक मैं बर धुकी हू । अच्युत हुआ—तू मिल गई । जल्दी जल्दी वह ही डालू अच्युत आते हामे और साथ म वही होगी । फिर क्या वह मुझे बोलने देगी ! ऐसे मेरा मुह टापकर रम्य देगी ।’ पसीने से तर, कापती सफेद हथेली स धुध्रा ने बड़े ज़ार स मेरा मुह बंद कर दिया और मेरा दम मा घुट गया ।

“ विवाह होते ही मैं समझ गई कि कालिंदी भाभी मुझे जानबूझकर ही मध्यमवर्गीय परिवार से इसलिए साई थी जिससे मैं जीवन भर उनका रोब मानती रहूँ । भातहीन देवर को उहोन पुत्रवत् पाला था । कहीं ऊँचे गृह की क्या साई तो मझने देवर की ही भाँति अपनी बहू के अगूँठे तले दबा मद बना वह भी न हाथ से निकल जाए । प्रत्येक बप दो माह की छुट्टिया हम उही के साथ मनामी होती । यही नहीं उनका आदेश अच्युत के लिए बानून की अमिट रेखा थी । सतानहीना कालिंदी भाभी का स्वभाव दिन प्रतिदिन उग्र होता जा रहा था । उनका प्रत्येक वाक्य मुझे बार बार स्मरण दिलाता रहता कि आज जो मैं इतने बड़े अफसर की पत्नी हूँ उसका श्रेय मेरे भाग्य को नहीं, स्वयं उहीके ओदाय को है ।

“ हा गज की दूरी पर मायका था किन्तु मुझ दस बप के पुत्र की मा बनने पर भी, इतनी स्वतंत्रता नहीं थी कि अपने अपने बड़ विधुर रिता के पास एक रात भी बिता लूँ । रात रात तक उनकी ब्रिजलीला चलती और मुझे कई बार कौंकी मनान की हाक लगती । कभी कभी तो सधकी उपस्थिति म वे मुझे बुरी तरह अपमानित कर देती ‘इतने सान्न हो गए धुध्रा, पर डग से बाँटा चम्मच पकड़ना भी नहीं सीख पाई ।’

“ मैं मन ही मन उबल उठती । अपनी संपत्ति का लाग्य घमंड करें कालिंदी भाभी घर की धुध्रा मे मेरा ही पलड़ा सबसे भारी था । भारी चुबक की स्वाभाविकता से एक दिन मेरा ही पुत्र, अपना साहब की संपत्ति को लीच लेगा । मालिनी भाभी के एक ही पुत्री थी, उसे भी पोलियो ने पंगु बना दिया था । वैसे इसी लीच कालिंदी भाभी एक और मूखता कर बठी थी । जेठजी के एक साले जिलाधीश थे । उन्होंने किसी अनायालय मे, एक सुन्दरी अनाथ बालिका देखकर कालिंदी भाभी को फोन कर दिया था ‘तुमने कभी कहा था

कि तुम किसी भनाय बालिका को गोद लेना चाहती हो। क्या इस बच्ची को लेना चाहोगी ?

‘स्वयं जठजी ने उस प्रस्ताव का धीरे विरोध किया था—पता नहीं, किसकी लड़की है। विवाह के समय पचास समस्याएँ खड़ी होगी, फिर पराई सतान बटोरने की तुम्हें क्या पड़ी है ? क्या सुआ का बेटा, मालिनी की बेटो हमारी सतान नहीं है ?—किंतु कालिंदी भाभी का बड़ता रक्तचाप ही उनका प्रह्लास्य था। उसीके प्रयोग से उन्होंने अपनी उस बचकानी जिद को भी पूरा कर लिया।

“लड़की वास्तव में सुंदर थी। भूरे बाल, बहुत गोरा रंग और मछली सी तिरछी आँखें। कुछ दिनों तक वह अपने परिचित परिवेश के पश्चात् हमारे गृह के वैभव का देखकर सहम सी गई थी, पर फिर उसके स्वभाव की चंचलता स्पष्ट हो उठी। चार ही दिन में कालिंदी भाभी ने उसपर जादू की छड़ी सी फेर दी थी। नये ढंग से बटे वेश, एक से एक सुंदर फाव और शिपट में वह अब पहचानी ही नहीं जाती थी।

‘एक दिन अच्युत ने कालिंदी भाभी को छेड़ दिया, ‘एकदम एंग्लो इंडियन लगती है तुम्हारी इला। देख लेना भाभी, बड़ी होने पर, एक दिन अपना साहब की सारी संपत्ति लेकर किसी दागले इजन ड्राइवर के साथ भाग जाएगी।’

“‘भागेंगी क्या’ गंभीर स्वर में भाभी ने कहा था, ‘घर का सोना घर ही में रहेगा अच्युत, इसे तुम्हारी बहू बनाने तो लाई है।’

‘‘छि भाभी, मैंने तड़पकर कहा था, ‘ऐसा रिश्ता सुनने में भी पाप लगता है, चचेरे भाई बहन का विवाह होता है कहीं।’

“कैसे भाई बहन ? मूल कही की।’ कालिंदी भाभी बोली, ‘इसीलिए तो किसी प्रबोध लड़की को मैंने गोद नहीं लिया। वह खूब समझती है कि इस हवेली से, उसके रक्त मांस का कोई रिश्ता नहीं है।

‘फिर तो, वे जस हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गईं। कभी अतुल से कहती, ‘जा, अपनी बहू से खेल।’ कभी कहती, ‘सुआ, अपनी बहू को देख जरा। ठीक तेरी ही तरह अमरुद चुराकर फुतर रही है।’

‘मैं मन ही मन बौखला उठती। इला अभी से ही इतनी सुंदर थी, फिर भविष्य की उस सुलक्षणा स्वयंदूती के एक-एक लक्षण मुझे सहमाने लगे थे। बचपन से ही ऐसी पकी बातें सुनकर क्या यह संभव नहीं था कि पाल के पकाए गए पपीते की भांति मेरा प्रबोध पुत्र भी अकाल परिपक्व हो उठे ? अतुल को अपनी सगी चचेरी बहन से कोई लगाव नहीं था, किंतु इला के बिना उसका एक पल भी जैसे साध्य नहीं रहता। एक तो, वह दुःसाहसी दस्युकन्या, पेड़ पर जंगली बिल्ली की ही फूर्ति से चढ़ सकती थी। उसके मित्रों के साथ

क्रिकेट खेलती थी। लड़कों के प्रत्येक खेल में उसकी रुचि थी और लड़कियों के खेल से भी घोर अरुचि। हॉल चेंबर पर अवश बैठी मालिनी भाभी की बेटी अजना, अपनी सुंदर गुड़िया का उत्कोच देने पर भी जिसे अपनी सहेली नहीं बना पाई थी, वह मेरे बेट की अंतरंग बाल्यसहचरी बन उठी थी।

“एक दिन कालिंदी भाभी ने खान की मेज पर मुझे फिर छेड़ दिया, ‘छोटी, कभी कभी तो इला की शक्ल तुझमें इतनी मिलती है कि लगता है, तेरी ही बिटिया है।’ इस बार बंभू नहीं बाल रही थी। उस अज्ञात कुल की अवैध बालिका के चेहरे की मेरे चेहरे से सचमुच आश्चर्यजनक समानता थी। अपने बचपन की तस्वीरों से उसका मिलान कर मैं स्वयं दग रह गई थी।

‘उस इक्कीस माघ को प्रकृति भी मेरी परिहास योजना में, स्वयं ही रस ले उठी। मुझे कालिंदी भाभी की व्यंग्योक्ति उसी क्षण उकसा उठी। क्यों न अनुकूल परिस्थितियों का लाभ उठाकर, उनका मत्सर बाण उड़ी की ओर मोड़ दूँ। फिर उसी दिन मालिनी भाभी भी मुझे जोश दिला गई थी—क्यों री गुन्ना, पिछली पहली अप्रैल को हम तो खूब रला चुकी है। इस बार वही भाभी को रला व तो हम भी जानें।”

“पिछली पहली अप्रैल को मैंने मालिनी भाभी की मा की बीमारी का झूठा तार भेज, उह विस्तर बघया स्टेशन भी भेज दिया था। कालिंदी भाभी ने मुझे बाद में चीरकर घर दिया था, ‘यह भी कैसा मजाक है छाटी!’

‘पर दोष मेरा नहीं था। रुप और वैभव के गव में फूनी मालिनी भाभी, इधर नैस के गुब्बारे सी पकड़ में ही नहीं आती थी। एक दिन बोली थी, ‘हमें कभी कोई बुटू नहीं बना सकता। इतनी पहली अप्रैलें आईं और गइ, मजाल है जो किसीका कंधे पर भी हाथ घरन दिया हो हमने।’

“वस तीसरे ही दिन मैंने उनका कंधे पर हाथ ही नहीं घरे उह भ्रुकभोर भी दिया। इसीसे जब उ होन मुझे दुबारा सलकारा, तो मैंने हसकर कहा, ‘अच्छा भाभी, इस बार भी मुझे तुम्हारी चुनौती स्वीकार है।’ और उसी क्षण, मेरे कौतूहलप्रिय मस्तिष्क में मरी कुटिल योजना, बिजली बनकर कौंध गई। क्यों से संचित हृदय की अभ्यक्त बुद्धन प्रतिशोध लेने परिहास की वैसाखिया टेकती खड़ी हो गई।

“पहली अप्रैल को वह सुबह किसी विश्वारी के अदसत कोमारोज्ज्वल स्मित सी ही स्निग्ध थी। सोमवार को भाभी हम दोनों दरखानिया के साथ हवेली के शिवालय में जाती थी। फिर उस दिन पाश्चिम पूजन था। नहा धाकर घाठ वज तैयार रहन का आदेश हम मिल चुका था।

“कभी हमारे स्वसुर के अंतरंग मित्र, स्वयं जगद्गुरु ने उस शिवालिंग की स्थापना की थी। उस शिवालिंग की महिमा का इतिहास भी विद्यत था। कैस

उसके स्थापित होते ही, अपना साहब को सटटे में अग्रत्यागित लाभ हुआ था, और गह के दो दो पुत्र एकसाथ सिविल सर्विस में निकल आए थे, यह सब मैं सुन चुकी थी। गृहकलह के छोटे मोटे मुकदमे भी बम भोले के उस अप्रपूव 'याया' लय में ही निबटाए जाते। शिवालय में ली गई झूठी सपना तत्काल उस उग्र देवता का अभिशाप बनकर, अभियुक्त के सिर पर मत्त ताड़व कर उठती।

“‘कालिंदी भाभी, आज मैं आपके साथ अकेली ही चलूंगी।’ मैंने कहा।

“‘बया?’ भाभी गरजी।

“‘मुझे आपसे एकांत में कुछ कहना है।’ मैंने कहा।

“‘कौन सी ऐसी बात है, जो तुम मालिनी के सामन नहीं कह सकती।’ वंशाख का पहला सोमवार है, उसे भी चलना होगा।’

“‘नही भाभी,’ अपना स्वर की दृढ़ता से मैं स्वयं ही चौंक उठी, ‘वंशाख का पहला सोमवार है, इसीसे चाहती हूँ कि आज की पुण्य तिथि में, आपकी और भोलानाथ की पावन उपस्थिति में, मैं अपना पाप स्वीकार कर लूँ।’ मेरे अस्वाभाविक दृढ़ कठस्वर की नम्रता ने भाभी को शायद उलझन में डाल दिया।

“‘मालिनी,’ उन्होंने मालिनी भाभी को बुलाकर कहा ‘आज तुम घर पर ही रहो। पाश्चिमी पूजन में शायद कुछ देर लगेगी। सोचती हूँ एक आवृत्ति रुद्रि पाठ की भी करवा लूँ। इतनी देर तक तुम्हारी लडकी का अकेली रहना ठीक नहीं। मैं प्रसाद आरती के लिए तुम्हें बुलावा लूँगी।’

“मालिनी भाभी ने आश्चर्य से मुझे देखा और मेरी सूक्ष्म दृष्टि की कौतुक-पूर्ण चावनी से शायद समझ भी गई कि परिहास रंगमंच पर मेरे प्रहसन नाटक के अद्भुत सूत्रधार नटी अवतरित हो चुके हैं।

“शिवालय के शीतल पत्र पर तीन कुशासन बिछाकर पुजारी ब्रह्मदत्त हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे।

“‘अरे मझली बहूजी नहीं आई?’ उन्होंने पूछा।

“‘नही, उसे घर का काम सौंप आई है। आरती के समय बुला लूँगी।’ भाभी बोली।

विधि विधान से हमने पूजन किया। गोबर, मिट्टी और चावल के ग्यारह सौ नूतने शिवालिंगों को दुग्ध घबल घार से सिक्त कर, घरा पर लोट लोट कालिंदी भाभी क्या माग रही है यह मैं जान गई। न जान कितनी व्यर्थ औपधिया, शल्यक्रिया, गड़े तावीजों से लदा उनका फलहीन प्रोढ़ तरुवर सूखी और मुरझाई पीली पत्तियों के साथ साथ स्वयं भी सूखने लगा था, किंतु अपनी वयस के पतलीसवें वर्ष में भी उन्होंने फल की आशा नहीं त्यागी थी। आरती के लिए मालिनी भी आकर न जाने कब हमारे पीछे बैठ गई थी। आरती हुई। पंडितजी ने अभिषेक की शीतल बूंदों से हमें भिगोया, फिर ओठों से विधिवत

ध्वनि सगीत प्रस्तुत कर पूजन के लिए आवाहन कर, निमंत्रित किए शिवजी को विदा दी, तो भाभी बोली, 'पंडितजी, आप भक्तों के साथ हवेली चल भोजन पाए। हम दोनों थोड़ी देर में स्वयं ही एक आवृत्तिपाठ कर आ जाएंगी।'

'मालिनी भाभी न जोर से मुझे चिकोटी भरी, जैसे एक आवृत्ति पाठ की मिथ्या घोषणा के पीछे छिपा रहस्य समझ गई हो। चलते चलते भाभी की नजर बचा मेरे कान के पास आकर फुसफुसा भी गई, विश यू बेस्ट आफ लक।'

"उन दोनों के जाते ही बालिदी भाभा मेरी ओर मुड़ी 'क्यों, क्या कहना है तुझे छोटी?' कुछ पला के लिए मैं हवा में हिलती दीपशिला को देखती ही रही। अगरवत्ती की सुगंधित अवस न धूम्र रेखा के बीच कैसा दिव्य सनाटा था। भव्य शिवलिंग पर लगा गारोचन अगद कुकुम का तिलक और इधर उधर बिखरे शिवनामांकित हरे विस्वपत्र। मुझे सहसा अपनी अल्पज्ञता डक दे उठी। ऐसे पवित्र देवालय में क्या अपना ओछा परिहास कर पाऊंगी। जो मे आया हसकर सब कुछ उह बतला दू। पर दूसरे ही क्षण अपनी गर्विली भक्तली जिठानी की चुनौती का स्मरण हो आया और मैं फिर तन गई।

"आपसे जो मैंने आई बहन के रिश्ते की बात कही थी, वह एक दम सच है भाभी' मैंने कहा।

"कैसे सच हो सकती है छोटी। तू जानती है कि दोनों में रक्त मांस का कोई भी रिश्ता नहीं है' उनका स्वर मंदिर के दमामे सा गूँज गया।

"वही कहने तो यहाँ आई हूँ भाभी। इला मेरी बटी है।'

'बालिदी भाभी न चौकवर मुझे देखा, 'क्या तेरा विभाग फिर गया है छोटी।'

"ठीक कह रही हूँ भाभी आपका याद होगा विवाह के सात माह पूर्व मैं अचानक मौसी के पास बरेली चली गई थी। फिर वही एक अचानक बदकमरे में मैंने इला के जन्म की प्रतीक्षा की थी। ईश्वर की कृपा से समय से पूर्व ही इसके जन्म ने मुझे मुक्ति दे दी। आपको याद होगा, मेरा घूँघट उठाते ही आपन कहा था—अरे तरा चेहरा इतना पीला कस पड़ गया।

'ओफ, कितना बड़ा झूठ बोल गई थी मैं। परिस्थितियाँ को मैंने जिस अप्रूप छल दल से तोड़ मरोड़ लिया था। फिर जैसे कोई चतुर दस्यु लोहे की मोटी मोटी छड़ो को तोड़ मरोड़ भीतर घुसपठ कर लेता है, वैसे ही मैंने सौ सौ दलीलें पाकर भी कभी आश्वस्त न होनेवाले भाभी के शककी स्वभाव की अगला को लपककर खोल लिया। विवाह से पूर्व सनिपात ज्वर का आभास पाते ही पिताजी ने मुझे मौसी के पास बरेली भेजा अवश्य था, किंतु मेरी उस यात्रा के पीछे किसी कलक की बालिमा नहीं थी।

“मोसी मिशन अस्पताल में डाक्टरनी थी और मेरे पीले चेहरे के पीलेपन में, कुछ मामी भाभियो द्वारा पोती गई हल्दी का कला कौशल था, कुछ सन्निपातजय रगतहीनता ।

“‘वेशारम ?’ भाभी बोली । उनका रक्तचाप उनके गोरे चेहर पर झमीर बनकर फैल गया, ‘उसी आवाज से शादी क्यों नहीं कर ली तब ? इस हवेली में घाई किस दुस्साहस से ?’

“‘क्योंकि’ ‘क्योंकि’ को मन्त्रणा देती कुब्जा मथरा ही जैसे उछलकर मेरे जिह्वाग्र पर बैठ गई, ‘मैं उससे विवाह भी करती, तो इसी हवेली में आना पड़ता फिर मैं उससे विवाह कर भी नहीं सकती थी ।’

“‘क्यों ?’ भाभी के प्रश्न की हिस्टीरिकल गूज से मंदिर का घंटा भी हिल गया ।

‘‘क्योंकि उसका विवाह हो चुका था । उनके प्रश्न के तीव्र स्वर की मोड़ की, मेरे उत्तर का कोमल गांधार इस बार पागल बना गया ।

“किसी दुर्दांत बालक द्वारा चिढ़ाई गई कोकिल के से खींके स्वर की कुह इस बार तीव्रतम हो उठी ।

“किससे ?’ उन्होंने सास रोक्कर पूछा ।

“‘आपसे,’ कहकर मैंने धावें मूढ़ ली । उस सफेद पड़ गए रोबदार चेहरे की सजिक दीनता देखने का मेरा दुस्साहस स्वयं ही दप से बुझ गया ।

‘जब आलें छुली ता बालिंदी भाभी पागला की भाति झूय दृष्टि से मुझे घूर रही थी । मेरे प्रति जेठजी का अनोखा लाड, विवाह से पूर्व मुझे बचाने की धामी गई भाभी की भुजा, छुट्टिया बढ़ाने का दुलार भरा आग्रह, और आज भवानक उनका जघन बन गया अपराध, मेरे अतुल के प्रति उनका अनम प्रेम, ये सब तथ्य, मेरे पक्ष की सबल बनाने, सभ्रात परिवारो से आए शिष्ट गवाहो की भाति मुझे घेरकर खड़े हा गए । ‘छोटी’ अयाह जलराशि में डूबती भाभी सहसा तिनका पा गई । मेरा हाथ, अपनी गोरी गुदगुदी हवेली में धामकर, उन्होंने शीतल सद्य अभिविक्त शिबलिंग पर धर दिया, इनकी शपथ खाकर कह छोटी यह सब सच है ।’

मैं एक पल के लिए किम्बकी । सत्कारशील चित्त ने हवेली हटाने की चेष्टा भी की, किंतु घाघ भाभी ने हाथ कसकर दाबा था ।

“‘हा, भाभी, सच है ।’ मैंने कहा ।

‘उन्होंने फिर एक शब्द भी नहीं कहा । घर पहुंचते ही जेठजी द्वार पर मिल गए ।

‘‘अर छोटी, आज तुमने दुबारा चाय नहीं पिलाई, तो तप्लि ही नहीं हुई । बनाओ ता एक प्याला बढ़िया चाय ।’ उन्होंने हसकर कहा । बालिंदी

भाभी उन्हें आग्नेय दृष्टि से भस्म करती भीतर चली गई और फटाक में अपने पलंग पर लेट गई ।

“ मैं स्टोव जलाकर जेठजी के लिए चाय बना ही रही थी कि हसती-हसती मालिनी भाभी आ गई, क्यों री छोटी, लगता है कुछ गहरा मझाक कर आई है । बाहू भई, भान गए तेरी बात । तूने बीरबल का भी हसा दिया । ”

‘ चाय उबली भी नहीं थी कि जेठजी भागत भागते आए, ‘लगता है कालिंदी को रक्तचाप का बेढब दौरा पड़ गया है, वह तो एकदम बेहोश-सी पड़ी है । आखें ही नहीं खोलती । ’

“ उनकी आखें फिर सचमुच ही नहीं खुली । देखते ही देखते, तीन चार डाक्टर आए, उन्हें तत्काल अस्पताल ले जाया गया । किसी आकस्मिक उत्तेजना से दिमाग की नली फट गई थी । सेरिब्रल अडोसिस या तो अब प्राण हरेगा या वाणी ! ”

‘ भगवान कर, ऐसा ही हो ’ मैं मनाने लगी । मेरे कलमुह घातक मझाक की, मेरे देवतुल्य जेठजी से, भाभी कभी कोई कफियत न माग सकें ।

‘ पर बिना किसीसे कफियत मागे ही कालिंदी भाभी मन का समस्त प्रयत्न आक्रोश मन ही मे लिए रात के ठीक दस बजे चली गई । ऐसी आकस्मिक मृत्यु के लिए मैं प्रस्तुत नहीं थी । पर सब पूछो तो वे गई नहीं हैं । तब ही निरपराध रात भाभी रात मरी छाती पर चढ़कर कहती हैं—‘तूने कहीं शपथ खाकर मुझसे मेरा पति छीना, अब तुझे भी पति का सुख नहीं भोगने दूगी । ’ जब-जब प्रच्युत मेरे पास आते हैं, वे साथ रहती हैं । वह देख वह देख अब मैं कहा छिपू—कहा ? ”

व्याकुल होकर वह मुझसे लिपट गई । मैं घबड़ा गई अभी तक तो यह अच्छी भली थी । अब हजरतगज के भीड़-भरे चौराहे पर, कार मे घर घर बापती मुझसे लिपटी अपनी इस विचित्र सगिनी को लेकर, मैं क्या तब बठी रहूंगी !

सहसा एक बलात कठस्वर सुनकर मैं चौंक उठी, ‘ कितनी परेशान कर ठासती हो तुम सुन्ना । ”

उसने शायद पहल मुझे नहीं देखा । फिर दसते ही नम्र स्वर में बोला, “ शमा कीजिएगा, असल में घंटे भर से इन्हें बूढ़ता-बूढ़ता परेशान हो गया है ।

“ मैं चलो सुन्ना । ” मैंने कहा, पर वह तो जैसे बाठ बन गई थी, कार के बाच पर राठी भावनाहीन दृष्टि और कठोर मुखमुद्रा । मैं सहमकर उतर गई ।

“ चलिए आपका छोड़ दो । ” उस सौम्याकृति प्रौढ़ ने कहा ।

“ नहीं, आप चिंता न करें । मैं रिक्शा कर लूंगी । ”

अपराधी कौन

अमला बार बार बाहर जाती और अपने सजे बगसे की अनूठी सज्जा देख कर स्वयं ही मुग्ध हो जाती। रंगीन नीली मद्धिम रोशनी के लट्टू, पेड़ की हर पत्ती पर जुगनू बने घमक रहे थे। सामियाने की रंगीन छाह में कई सोपे और कुसिया मण्डलाकार घेरे में रखवाते श्यामबिहारी एक साथ कई निर्देशन दते किसी कुशल बण्ड मास्टर की भांति हवा में दोनों हाथ उठा उठाकर गिरा रहे थे। अमला को पति की हडबौंग देख, हसी आ गई। एक तो वैसे ही सामान्य सी घटना स उत्तेजित हो उठते थे, उसपर आज पहली पुत्री का विवाह था। वह पति से कहीं अधिक मात्रा में भास्वस्त हो बारात की प्रतीक्षा कर रही थी। आखिर बाराती भी बयो ? सब ही कुछ तो द रही थी, कनक को ? फ्रिज, रेडियोग्राम, फियेट और फिर एक तगड़ा सा चैंक। बीसिया भूखी शेरनी सी माताओं के मुख से वह अपने भावी जामाता का पुष्ट प्रास लुभावने दहेज के बूते ही तो छीन पाई थी। उसकी कनक सावली थी, पर इस युग में क्या जामाता भावी पत्नी का रंग देखता है ? उसे तो अब भावी स्वसुर के मोहदे का रंग ही अधिक आकर्षित करता है। जहां तक इसका प्रश्न था, श्यामबिहारी अपने मोहदे के चोखे रंग से किसी भी सुपान्न को चुम्बक की भांति खींच सकते थे। एक तो वे कमिश्नर थे, उसपर आई० सी० एस०।

‘हम आई० सी० एस० अब रीवा के अलम्य सफेद शेरों की भांति, अपनी वश वृद्धि की क्षीण सम्भावनाओं के कारण अनमोल हो उठे हैं।’—ये प्राय ही हसकर अमला से कहते रहते। आज तो उन्हें बात करने की भी फुसत नहीं थी। सुबह से जनवासे का ही प्रबन्ध देख रहे थे। नाऊ, तम्बोली, घोड़ी—सबके तम्बू तन चुके थे और तीनों किसी अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के से विभिन्न स्टाल में खड़े अधिकारियों की ही तत्परता से मुस्कराते खड़े थे। यह भी इस अनोखे युग का एक अनोखा रिवाज चल पड़ा था। आएंगे छैला बाराती बनकर, पर दजनों घड़े से निकाले गए सूट इस्थी करवाने के या के पिता के यहां ही लाएंगे। जिस देखो वही हजामत बनवाने बैठ जाएगा, चाहे बाराती हा या बाराती। ‘मुफ्त का चंदन घिस मेरे न दन’, इसीको कहते हैं। कहीं बारातियों के आने के पहल ही सब पान निगोडे घर ही के मेहमान न चर डालें—अमला मन ही मन भुनभुना रही थी। एक तो घर में ही मेहमाना न चार दिना में उसका पटरा बँठा दिया

था। पाच दर्जन तो बच्चे ही भिनभिना रहे थे, उसपर देवरानी जेठानी और चचेरी ममेरी ननदो ने नखरे देर उसका खून खौल रहा था। इसीसे भागकर बाहर आ गई थी। बरेली वाली ममिया सास को सहसून प्याज की बदबू से दिल के दौर पड़ने लगते थे, उनका कमरा भलग करके उठी ही थी कि दो चचेरी ननदो ने बच्चों को लेकर मयानव युद्ध छिड़ गया था। दोनों सगी बहनें थी, पर आज आमने सामने तनी रणधण्डी ही तो बन गई थी। उ हे छुड़ाकर भलग किया, तो उसकी स्विस भाभी एक ही पटीकोट और बिना बाहों का ब्लाउज पहने अधनग्नावस्था में घदली अपरासियों के सामने ही उससे साड़ी पहना देने का अनुरोध करने आ घमकी। पिछला माह उसका छोटा भाई विदेश से एक लम्ब-तडगी ब्याह लाया था। क्या करती बेचारी अमला भाई को बुलाती और भाभी को बँस छोड़ दती। उसकी ताड़ सी देह में साड़ी लपेटना आकाश में चढ़ोवा टाकना था। साड़ी पहनाते ही वह चटपट बाहर निकल आई थी। बारात भी तो आती ही होगी उसने घड़ी देखी, अभी देर थी। पर बारात के आने से भी अधिक चिन्ता उसे एक और व्यक्ति के आने की थी और वह थी उसकी फास प्रवासिनी ननद मीना, जो पूरे बीस वष बाद भाइके लौट रही थी।

कभी यह ननद उसकी प्राणप्रिया सखी थी वही उसे सिर आखों पर बिठा कर इस गृह में लाई थी, उसकी सास न तो दूसरी लड़की पसन्द की थी। कुछ दिनों तक दोनों की मैत्री, मुहल्ले भर की स्त्रियों के हृदयों में बिप धोलती रही।

दोनों एक से कपड़े पहनती हसती, खिलखिलाती एक दूसरी को बाहा में लिए फिरती रही, फिर जैसा प्राय ऐसी प्रगाढ़ मैत्री का जल होता है, वैसा ही हुआ। अचानक दोनों में ऐसी ठनकी कि आखों ही आखों में नगी तलवारें लप लपाने लगीं और दो टूट हृदयों की दरार, मीना की विदा तक नहीं जुड़ी। भगड़े का सूत्रपात हुआ था आभूषणों को लेकर। मीना की विधवा मा का पूरा गहना, एक सामा य सी पोटीसी में बधा काठ के बक्स में पड़ा रहता। कई बार पुत्र के समझान पर भी, वे बँक में रखने की राजी नहीं हुईं तो लीभकर श्याम बिहारी ने कहना ही छोड़ दिया, पर इधर उनका अधिकांश समय तीर्थयात्रा में ही निकलने लगा था और व एक एक कर अपने आभूषण कभी बद्रीनाथ चढ़ा आती, कभी रामश्वरम् ? एक दिन अमला और मीना ने मन्थना की, जैसे भी हो अम्मा के इस धार्मिक श्रौदाय के सलाब को बाधना ही होगा।

‘अम्मा जी, अब मीना की सगाई हो गई है, आप ऐसे गहने मत चुटाइए’ अमला ने एक दिन सास को टोक दिया।

“हा, अम्मा आज फसला ही कर दो क्या मुझे देगी और क्या भाभी को” मुह लगी मीना ने दोनों बाह अम्मा के गले में डाल दी, “वही ऐसा न हो कि

कभी इसी करमजली पोटली के पीछे हम दोनों चढ़ पड़ें।”

अमला हो होकर हस उठी थी।

तब तब दोनों ननद भाभी, अटूट मैत्री के इस रस सागर में आकण्ठ डूबी थी। इसीसे बलह की काल्पनिक सम्भावनाओं का प्रसंग भी हास्यास्पद लग उठा था।

ला मरी, निकाल ला पोटली, आज ही बाट बंटकर भगडा निबटा दूँ” अम्मा ने चाबी का गुच्छा हसकर पटक दिया था और मीना चटपट पोटली निकाल लाई।

प्रोफ कैसे कैसे भारी गहने थे, टोक मगर, अनन्त, जयपुरी झमर रामपुरी मछलिया चन्द्रहार बेसर और कुं दन की पट्टी थी।

मीना के नाना सिविल सजन थे अम्मा इक्कीती पुत्री थी इसीमे नाना ने गहनो से लाद दिया था सबसे विलक्षण आभूषण था, एक लम्बी नीली मखमली डिबिया में बंद नागिन क आकार की लचकती करघनी।

उसकी जालीदार नक्काशी पहले भी कई बार ननद भाभी को भुमा चुकी थी पर तब ईर्ष्या का सप फन फैलाकर दोनों में से एक को भी डसने नहीं दीडा था।

आज दोनों के कलेजे एक साथ घड़क उठे। पता नहीं अम्मा करघनी किसे देंगी।

मीना सोच रही थी, ‘मैं तो अम्मा की इक्कीती बिटिया हूँ, करघनी मुझे ही देंगी।’

अमला सोच रही थी ‘कितने अरमानों की बहू हूँ मैं। करघनी हो न हो मेरे ही हिस्से में आएगी।’ अम्मा की ख्याली हडिया में उधर उबाल पर उबाल आ रहे थे। सब गहना मन ही मन बांट चुकी थी, पर दोनों की तष्णा के प्राण उनकी करघनी पर ही अटक है वे जान गई थी। बेटी तो पराया घन है, बत परतो क्याह हागा तो पराई हो जाएगी। जि दगी तो उसे बहू के साथ ही काटनी थी फिर करघनी भी साधारण नहीं थी। एक चिररण जडिया को मीना के नाना ने उमका खोया पोछप लौटा दिया था। अपनी मूक कृतज्ञता को उसी अनूठी करघनी की कारीगरी में वह सदा के लिए अमर कर गया था। कैसे लपलपाती जीम थी नागिन की। आखो में जगमागती दो हीरो की बनिया जडी थी। उस धमत्कारी करघनी का एक और आकषण था। एक पेंच घुमाते ही वह अपनी केंचुली छोड़ देती जो लण भर में सिमटकर, बाइ और चाबी का गुच्छा बनकर लटक जाती थी। अम्मा कहा करती थी, जब करघनी बनकर आई तो उसे देखने लाट साहव की मेम भी आई थी। वही करघनी आज किस भाग्यशालिनी को मिलेगी।

८१६२

अम्मा ने एक एक कर गहनों की दा डेरिया बना दी ।

टाक, बेसर, चन्द्रहार अमला का ।

कवण, भ्रमर, सतलडी मोना की ।

राजस्थानी बोरला अटर बटर आया अमला की डेरी मे ।

कुंदन की चम्पावली, उड़ीसा की कटकी, सोने की कधी मोना की ।

दोनों डेरिया ऐसी 'यायपूण मूमबूभ' का प्रतीक थी कि किसीमे भी घट

पड़ वा प्रश्न ही नहीं उठता था ।

अकेली करघनी बच गई ।

मीना घबाना बचल गई, "अम्मा, चाहे हमारी डेरी व दो तीन गहने भाभी की डेरी मे डाल दो, पर हम तो करघनी ही लेंगी ।" उसन करघनी सधमुच उठा ली ।

सास ने बहू की गम्भीर मुखमुद्रा देखी, तो बड़े चातुर्य से बिगड़ती स्थिति ममाल ली ।

"अच्छा अच्छा, देखा जाएगा अभी तो तु दानी पोटलिया वकसे मे डाल दे । करघनी अलग रख दी है मैंने, पुर्जो डाल दें । क्यों है ना बहू ?

पर अम्मा की पुर्जो के पहले ही नियति की पुर्जो पड़ गई ।

मीना के विवाह की नियति निश्चित हुई तो गहन भक्तवाने सुनार बुलवाया गया । दानी पोटलिया क गहने ज्यों के त्यों घरे थे अम्मा की करघनी ही नहीं थी ।

अम्मा तो पागल ही-सी हो गई थी । एक तो शुभवाय के पहले मोना खो गया था, महा अपशकुन उसपर उनका सबसे प्रिय आभूषण । अम्मा ऐसा फूट फूटकर बाबूजी की मृत्यु पर भी नहीं रोई थी ।

पर यह हो कैसे गया चाबी तो निरंतर उन्हीके पास रहती थी, वभी वभी बहू माग लेती और वभी बिटिया । शीशम का वह बक्का उन्हीके कमरे में घरा रहता और व दिन-रात उमी कोठरी मे खजान पर बैठे सप की भाति कुण्डली मारे बैठी रहती ।

मोली अम्मा भागती भागती भूयुसहिता के पड़ितजी के पास भी गई थी ।

'सोयी वस्तु का चोर घर ही मे है पर मिलेगा बीस साल म ।'

'भाइ म जाए करघनी,' मीना ने धामू टपकने लगे थे । बीम वष तक क्या उसकी कमर ऐसी ही लचीली रह जाएगी ? क्या करगी करघनी का जब कमर ही नहीं रहेगी ।

फिर बेचारी रिक्त कमर लेकर ही ससुराल चली गई थी । दबसुर पास म इन क प्रसिद्ध व्यवसायी थे । पति के साथ मीना ने स्वदेश त्याग दिया घीरे घीरे यह मां, भाई भाभी सबको भूल गई, पर करघनी का नहीं भूल सकी ।

इतना यह मूब समझती थी कि चतुरा नटिनी सी भाभी की कुर्तौली उग-

लियो ने ही भोली अम्मा की चाबी तिड़ी कर रात ही रात में करघनी गायब कर दी थी।

आज पूरे बीस वर्ष पश्चात् वह भाई का पत्र पाकर स्वदेश लौट रही थी। अम्मा अब नहीं रही, पर फिर भी मायका मायका ही था। भैया को देखा तो वह रही सही पूर्व सन्नता भी बिसर गई। भैया ने मूछें रस ली थी, कनपटी के बाल सफेद हो गए थे और क्षण भर की उसे लगा जैसे बाबूजी ही हसत खड़े हो गए हैं और मौसी! स्तिना बुढ़ा गई थी मौसी, सामने के दो दात टूट गए थे, ठीक जैसे अम्मा की पोपती हमी का नक्शा फिर से उतारकर रख दिया था विधाता ने?

वह तो आसू ही नहीं रोक पाई, “क्यों री मुनिया, दामाद को नहीं लाई?” मौसी ने पूछा।

“भरी मौसी उन्हें क्या अपने कारोबार से कुसत रहती है।” उसने बड़े गव से कहा और भाभी की ओर बाहे फला दी।

उसकी तन्की भाभी बेहद फूल गई थी। करघनी धरी भी होगी तो इस विराट परिधि को कहा घेर पाएगी। उसे मत-ही मन गहरा सन्तोष हो गया। उसकी कमर तो अभी भी बिदेसी फोर्सेट के बंधन में बसी, उसकी कौमार्या वस्था का इक्कीस इंची घेरा निभा रही थी।

“तुम तो मीना वैसी की वैसी ही धरी हो,” भाभी का कण्ठस्वर भी शरीर के साथ साथ भासल हो उठा था।

“भतीजी कहा है मेरी?” मीना ने बड़े लाड से पूछा और भाभी ने एक सावली भी लटकी को उसकी ओर डेल दिया।

मीना ने भतीजी का माथा चूमकर कहा ‘मेरी दिया से सदा महीने बढी है तू।’

“उसे क्यों नहीं लाइ बुधा?” भतीजी ने पूछा।

“उसे अपनी दुकान सौंप आई हू रानी, एक दिन भी बन्द रहती तो तासो का तुलसान हो जाता, त्रिमस आ रहा है,” बुधा ने दप पूण उत्ति से महिला बृद्ध को घायल किया और घम्म से कुर्सी पर बैठ गई।

मीना की दुकान ‘भारती’ वास्तव में फ्रांसीसी सुन्दरिया के लिए एक बहुत बड़ा आकर्षण थी। भारतीय गहन साडिया, घालता नक्ली बोटिया, भूमर महा तब, कि भाग भरने का सिद्धर और बिछुए का जोड़ा भी मिल सन्नता था वहा। कभी फ्रांस में इनके दुकान भारतीय विवाहो के लगन तुलत हो मीना की दुकान ही साहाय्य पिटारी जुटाती।

जारा अम्मा की करघनी होती तो वह टिक्ट सगावर प्रदानी से ही मासा माल हो जाती। ऐसी व्यावसायिक गटकबाजी में उसकी बहपना बजोड थी।

“कुल जमा तीन दिन के लिए आई तू भाभी, इधर तुम्हारी रानी विदा हुई और मैं उड़ी फास की।”

अपने तीक्ष्ण रंगे नखों को उसने बिड़िया के उड़ जान की मुद्रा में चमका कर भतीजी को बुरी तरह प्रभावित कर दिया। जयमाल का समय हुआ तो अतिथिया की दृष्टि सलोनी दुल्हन के चेहरे पर टिकने के बजाय उसकी प्रौढ़ा बुझा की सावली गदन पर जम गई।

मीना एक अद्वितीय हीरों का हार पहने द्वार पर खड़ी मुस्करा रही थी। फुसफुसाहट सीढ़ हो उठी।

“कैसे जगमगा रहे हैं।”

“असली हीरे हैं।”

“बल हट विदेशी नकली हार भी ऐसे ही जगमगात है। पिछले साल मेरा छोटा भाई मॉण्ट्रीयल से लाया था।”

“नहीं नहीं, फास में इनके श्वसुर का लाग्ना का व्यापार है, इनकी भी तो दुकान है।”

“क्या बेचती है।”

ही ही ही—ईष्यालु स्त्रियों का अशिष्ट स्वर उनके कानों के पास ही सरक आया पर उस जगमगाती बुलंद इमारत के सामन छोटे मोटे आभूषण पहने नडकीली नारियाँ की आभा सहसा तुच्छ हो उठी, जैसे झोपड़ियों पर धरे दिए टिमटिमा रहे हो।

“क्यों री मुनिया, हार तो असली लगे है, आठ दस हजार का तो होगा ही,” मौसी न बड़ी ललक से, हार के लालक को हाथा में ले लिया।

“अस्सी हजार का है मौसी” मीना न कुछ ऊँचे ही स्वर में कहा। अपने दामो आभूषण का मूल्य बताने में क्या कभी नारी चूकती है। फिर तो दूल्हा को देव ही कौन रहा था। आँखों ही आँखों में हार की आलोचना चल रही थी।

“कहा था ना मैंने, अस्सी हजार का है।”

“ऊह सूरत तो सवा सौ की भी नहीं है।” पर एक एक कर झोपड़ियों के टिमटिमाते दिए बुझ गए, बुलंद इमारत जगमगाती रही। दूसरे दिन बारात विदा हो गई और अतिथिया के विस्तर बढ़ने लगे। एक तो लडकी के विवाह की रौनक, विद्युत छटा सी क्षण भर में ही लुप्त हो जाती है उसपर गृहस्वामिनी भी अतिथिया को रोकने के मूढ़ में नहीं थी। मीना न भी भाभी व तुच्छ स्वभाव को परख लिया था, उसने जान का प्रसंग उठाया, तो अमला ने औपचारिक स्नेह की सामान्य दलीलें दी फिर मान गई।

“बाजार से तुम्हारे लिए मेव और ताजी मिठाई लेती आऊँ,” कह वह झोला लेकर चली गई, तो मीना विवाह के भ्रम के बाद पहली बार घर में

“हाय मेरा क्याजा तो तुम जानती हो, एकदम पिढ़ी का है। सोचा, एक तो अम्मा क गोत म महाराजिनी आई थी, उतना मानती थी अम्मा, कही करघनी नहीं निकली तब ?” भाभी के चेहर पर ऐसा बचपना खेलने लगा जैसे दूध के दात भी न टूटे हो।

‘हाय रे मेरी पिढ़ी,’ मीना न बड़े लाड से भाभी को बाहुपाश में बस लिया, “अब खबरदार जो उम करघनी का नाम लिया मुझस बुरी कोई नहीं हागी, हा, सामान बाघ लू, फिर रात का खूब आराम स बातें करेंगे।”

करघनी सबसे नीचे घरी फ्रेंच शिफोन की साड़ी क नीचे, हीरो के हार के साथ कुण्डली मारे पड़ी थी।

उस रात को बारह बजे तक ननद भाभी बतियाती रही।

हार सहेजकर रख लिया ना मीना, कही बटुए म ही घरकर तो नहीं भूल गई ? बड़ी लापरवाह हो तुम,” भाभी ने पूछा तो मीना अंधेरे ही अंधेरे में मुह फेर कर मुस्करा ली।

“हा भाभी, वह तो मैंने कल ही सूटकेस म बंद कर लिया था।”

“मैं तो आज तुम्हारे ही साथ सोऊंगी पता नहीं फिर कब मिलना हो।” वह कूदकर मीना के साथ लिपट गई।

सुबह उठी तो भाभी उठकर, उसके साथ घरी जान वाली पञ्चवानो की टोकरी सजा रही थी।

आई भाभी दोनों उसके साथ स्टेशन भी आए परतीना ऐसे ठीक समय पर पहुँचे कि सामान लगाते ही गाड न भण्डी हिला दी। बड़ी हड़बड़ी म मीना द्वार पकड़कर ही खड़ी रह गई। अपन बातानुकूलित डिब्बे में वह अकेली थी।

“दामी खीज लेकर सफर कर रही हा मीना, सूटकेस को सिरहान पर लेना,” भाभी उसके पास ही आकर फुसफुसाई तो मीना का चित पश्चाताप से खिन हो गया।

कितनी नीच थी वह ! बीस बप पहले भाभी न उसको गदन पर छुरी फेरी थी, आज वह उसी जघन्य अपराध का दुहरा रही थी। अब तो उसके जी में आ रहा था, वह करघनी निकालकर अया भाभी के चरणों में लोट, अपना अपराध स्वीकार कर ले। विदा की बेला पुन अम्लान हो उठेगी।

पर गाडी स्टेशन छोड रही थी, किसी भी भावुकता के लिए अब समय नहीं था। आई और भाभी की आँखें गोली हो आई थी, अमला बुरी तरह नाक भिभोडती सिसक रही थी।

मीना भी अब अपन का नहीं रोव सबी और बच्चो की भाति मुबब उठी।

एक घण्टे बाद तूफान घटघटाती पटरिया का क्याजा रौन्तो चली जा रही थी और मीना दोनों हाथों से माया पकडे, दूध दृष्टि से अपन चारों ओर बिबर

साहियो के झग्डार को भविष्यवास्त स देख रही थी । वह बार बार एक एक साहो को झटक रही थी, यही थम वह पिछले एक घण्टे म बीसियो बार दुहरा चुकी थी ।

नही नही नही थी—घातिर सुई तो थी नही ।

रात भर भाभी उसे गलचहियो म घेरकर सोई थी चारों का गुच्छा पार करने मे उन घट्टितीय उगलियो न फिर अपनी प्रतिभा का प्रदशन कर दिया था । करघनी ता गई ही साथ म उसके हीरो का हार भी ले गई ।

अब वह असुल को क्या मुह दिखलाएगी । जल्दी-जल्दी मे बीमा भी तो नही करा पाई थी । फिर मायके म गहने की चारी क्या कुछ कम लज्जास्पद घटना है ।

अब क्या कर ? क्या फिर मायके लौट जाए ? क्या कहेगी भाभी से ? यही ना कि भाभी तुमने मेरे हीरे का हार चुरा लिया ।

पर भाभी तो पलटकर जित्त का घातक प्रहार सिद्ध कर सकती थी—
“मीना, तुम क्या मेरी करघनी चुराकर नही भागी ?”

उसके हीरे के हार का कवल लोलक ही बेचने पर, भाभी के पूरे खानदान की बटिया क्याही जा सकती थी । हाय ! कितन छोटे अपराध की कितनी बड़ी सजा मिल गई भाभी ।

तोप

तोप से मेरा परिचय आज का नहीं, उस ऐतिहासिक युग का है जब बट सचमुच बारूद और धाग के गोले उगसती तोप थी।

हमारी खिडकी के लोहे के जंगला से हाथ डालकर ही उसके दुमजिले मकान की छत छुई जा सकती थी। एक कागड़ी फूल की व पलता ने जग लगी छत को पूरा घेर लिया था। जजर टोन के टुकड़ों की पत्रिया ठोक ठोककर बरामदे की सुरक्षा का यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी एक दीवार भाँची टूट गई थी। जजर मकान को गिरा देने का नोटिस जब तोप का मिला, वह सीना तानकर अपनी छत पर खड़ी हा गई थी और नगर पालिका के हिंदू चेयरमैन पर उसने ऐसी भयानक गोलाबारी की थी कि उसके मकान गिराने के दुसाहसी प्रस्ताव को फिर कभी नहीं दुहराया गया।

द्वितीय महायुद्ध से स्तब्ध अल्मोड़ा शहर की छावनी में बाहर से आस्ट्रेलियन सिपाहियों की एक बहुत बड़ी फौजी टुकड़ी आ गई थी। शहर की बहू बटियों न मींदरी के दशन के लिए भी जाना छोड़ दिया था। सूप सी तिरछी खाकी टोपिया लगाए मकटमुखी फौजी टुकड़ी के लम्बे तडग खबीस अपने लोहे की कील जड़े बूटों से डामर लगी सड़क का कलेजा दहलाते परड करने निकलते, तो पटापट लिडकिया बंद होने लगती, पर तोप की खिडकी के पट सदा खुले रहते। यही नहीं, पलटनी बूटों की पदचाप सुनते ही वह अपना भाषा घड़ खिडकी से नीचे लटका देती, साथ ही "हू हनी" "हैलो, स्वीट हाट" के स्वरों के पत्रपुष्प, सीटियों से सवारकर तोप की अर्पित हाँ लगते उधर तोप भी बार बार अपनी भगुलिया चूम, मदश्य चुम्बनों का गुच्छे का गुच्छा हवा में फूँकर सड़क पर बिखेर देती। मैं उस निडर नारी का दुसाहस देखकर दग रह जाती। जिन गोरा को देवकर पहाड़ के पुरुषों के भी छक्के छूट जाते थे, उहीसे तोप की मंत्री के रहस्य को मैं समझ ही नहीं पाती थी, फिर शायद समझने की मेरी उम्र भी नहीं थी। सध्या होते ही तोप का दरबार जुट जाता, नगी छातियों पर आई लव यू का गोदना गुदाये, आस्ट्रेलियन लम्बे भूत से गोरे तोप का गोद में उठाकर ऊँचे स्वर में गाने लगते। कभी उसे चूम चूमकर हवा में मँद की भाँति उछाल देते, बड़ी रात तक उनकी हा-हा, ही ही चलती रहती सुबह रंग उड़ी तोप अपनी खिडकी के सामन खड़ी हो जाती तो अम्मा बोखला जाती— 'एक तरा बाप था

टॉमस मास्टर जब तक इस हिंदुआ ने मुहल्ले में रहा, एकदम हिंदू बना रहा। दीवालियो में दीये जलाता था और हातियो में उड़ाता था भबीर-गुलाल। एक तू है, जो नगेपन पर उतर आई है।”

“तो वह बेचारी भी तो भबीर गुलाल ही उड़ा रही है। भम्माजी, क्या बेकार कोस रही है।” छोटी भाभी खिड़की पर तोप को सुना सुनाकर कहती और तीनो भाभिया ठहाका लगाकर हस पड़ती। तोप भी निलज्जता से हसन लगती। मैं अचरज से कभी भाभियो को देखती, कभी उसे। कहा हाली खेती थी तोप ने। रंग से उसे बहुत चिढ़ थी। पिछली होली में हमने उसे रंग का मिर्गो दिया, तो उसने आफत ही कर दी थी। पर अब समझ में आया, ईश्वर ने यहां से प्राणी में भबीर गुलाल भरकर लाई थी वह अदभुत नारी। दोना हाथा से उलीचने पर भी उसकी रंगीन परोहर की मजूपा कभी रिक्त नहीं हुई।

तोप का नाम तोप नहीं था। नाम था क्रिश्चियाना बैरोनिका टॉमस। कण्ठ के पुरुष स्वर, छ फुटे मर्दान्तारी और कृष्ण वण को देखकर किसी कलामन्त्र ने तोप नाम घर दिया था। कण्ठ की गजना से उसका स्वभाव अच्छा रह गया था। प्रत्येक मोटी औरत की भांति वह सरल और निष्कपट थी। स्त्रियो में उठना-बैठना उसे पसंद नहीं था। उसके पिता पिथौरागढ़ के किसी स्कूल में अध्यापक थे। वही भोटिया लड़का था साथ उसने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। फिर तोप को एक मिशनरी में मद्रास उठा ले गई थी। मद्रास की जसबायुन ताप के रंग की और भी काला कर दिया था। “तोप, तुम इतनी काली कैसे हो गई? पहाड़ पर तो डोमनिया भी इतनी काली नहीं होती।” हमारी सुंदरी, रूपगविता छोटी भाभी कभी बड़ा क्रूर मजाक कर देती, पर तोप कड़े से कड़े व्यंग्य को भी चुटकिया में उड़ा देती—मद्रास में जो रही हूँ, बोज्यू। वहां क तो मुए कौवे भी काल होते हैं।” वह हस देती। मिशनरी मम की मृत्यु के पश्चात् तोप फिर पहाड़ पर चली आई थी। ऊंचे साहबी रहने सहने से उसका काला चेहरा बुद्धि प्रदीप्त हो उठा था। तेज लाल रंग की साडिया पहनकर वह घूमने निकलती, तो छोटी भाभी फिर तुफ़फ़ लगाती—“हाय हाय, कायले की कोठरी में फिर आग लग गई।”

तोप हसती और उन्हें चिढ़ाने के लिए बालों में पीला फूल लगा लेती—‘क्या करें, बोज्यू, दिन रात साली खाकी वर्दी पहनते पहनते तबियत ऊब गई है, इसीसे आज यह साडी निकाल ली।”

तोप फौज में बर्काई बन गई थी। एक दिन अपनी खाकी वर्दी में वह हमसे मिलने आई, तो तीना भाभिया हमती हसती दुहरी हो गई—‘क्यों जी तोप क्या काम करना होता है फौज में तुम्हें?’

छोटी भाभी ने उसके कान में न जाने क्या कहा और तोप सांल पड़ गई—

“हमको यह सब सस्ता भोजन पसंद नहीं है, यार।”—कहकर वह भरभराकर चली गई थी। फिर वह हमारे यहाँ सचमुच नहीं आई।

तीसरे दिन उसकी छुट्टिया खत्म हो गई। उसे सिकंदराबाद जाना था। मैं स्कूल जा रही थी तो देखा, साकी बर्दी में दोय्याल के सिर पर सामान लादे तोप चली जा रही थी। वहाँ तक तोप का कोई पता नहीं लगा। इस बीच बड़ी भाभी के पैर में कील चुभी। गैंग्रीन ने उनके प्राण ले लिए। मझली भाभी के खानदान का तीन पीढ़ियों का पागलपन उन्हें भी बरेली के पागलखान में खींच ले गया। छोटी भाभी को बाले साप ने काट खाया। प्राण तो नहीं गए पर साल में छ महीने उनकी टांग मुदगर सी सूजी रहती और वह यंत्रणा से चीख चीखकर छटपटा उठती। लोहे के जंगले पकड़कर खिड़की से मैं तोप के टूटे मकान को देखती। मरी आँखें भर आती। न हमने हसाने वाली तीन भाभियाँ ही रह गई थी, न बारूद के गाले उगलनवाली तोप। भायके की देहरी से ऐसी वितण्णा शायद ही किसी लड़की को हुई हो।

मेरे पति की नौकरी दोरे की थी। प्राय ही वह सम्बे दोरे पर गम्मा और मुनियारा की बोहड़ घाटियों में उतर जाते और मैं प्रकैसी रह जाती। बच्चे बोडिंग में थे, इसीसे मैं भी इधर उधर घूम आती। मुक्तेश्वर मुझे बेहद पसंद है। साफ सुपरे बगले, पहाड़ के बक्ष को चीरती फाड़ती, नक्ष में बनी नदियाँ की खीण रेखा सी पतली मोटर की सड़कें, पहाड़ी लोकगीता की मिठास से मीठी बयार में मधु घोलने वाले, सड़क साफ करते पहाड़ी गँग कुलिया का कण्ठस्वर, छोटी छोटी दुकानों में काठ के बाले ठेका में छलकता पीला रायता और पाली में तप्त वाचनवर्णी हल्दी से पीताभ बने जम्बू छोंके घालू। मैं प्राय ही बहन से मिलने मुक्तेश्वर चली जाती। उस दिन भी मैं मुक्तेश्वर ही जा रही थी। आवण का महीना था। लहंगा दुपट्टा पहन, थाल से चादविम्ब की नय से सवार, सुन्दरी साहिनियों का झुण्ड का झुण्ड जल चढ़ाने महादेव की गुफा की ओर जा रहा था। कहीं स पार्थिवपूजन के रत्नों के श्लोको की मधुर भावृत्ति का स्वर हवा में तरता आया, तो मेरे पास ही बैठे एक बुजुर्ग शायद उस नये जोड़े को, जो अपने निलज्ज प्रेम प्रदर्शन से उनकी बूढ़ी भज्जा जलाए जा रहा था, सुना-सुनाकर बहने लग—‘कुछ भी कहो, भाई, मर्यादा तो अपने कुमायू में है, बस, और वही नहीं।’ आवण का पहला सोमवार और महाहा भोल, तरी महिमा बिहर पहाड़ से रत्नों के श्लोक गूँज रहे हैं। पहाड़ की सड़कों पर भी देखो, वही गंद बिनापन नहीं। लिखा भी है, तो चाम छोड़ो, ‘साराब छोड़ो।’ अब बाहर दस में चले जाओ। मरे यार, तो कहीं दीवारा पर लिखा है क्या? गंदी बीमारियों का इलाज। छि। य।” बड़ी घणा से उहाँन बाहर युवा। दिया जान टीक नहीं बँठा और उनके उदत धूँ के पवित्र छोंटा ने नय जोड़ के दोनों चेहरे का रग रगिया।

फिर तो वह रग जमा कि बस । जोड़ा पजाबी था, घुरी तरह पड़ितजी के पीछे पड़ गया ।

उधर, बाहर गरज के साथ छीटे पड़न लगे थे । पिछली तीन रातों से पानी बरस रहा था । बरस के भीतर चल रहे गृहयुद्ध के नाटक की यवनिका को प्रकृति ने अचानक गिरा दिया । एक पहाड़ का बाम अंग भरभराकर गिर गया । झाड़वर ने हथियार डाल दिए । अब वह न आगे जा सकता था, न पीछे । यात्रियों के सम्मुख उसी ने प्रस्ताव रखा— मेरे भरास सामान छोड़ सकें, ता आप लोग आराम से भुवाली जाकर रात बिता लीजिए । कल तक शायद कोई इंतजाम हो जाए ।”

सब यात्री एक एक कर हाथ में झोला लिए उतर पड़े । पहाड़ी झाड़वर के ईमान को प्रहरी बनाकर सामान छोड़ने में किसीको आपत्ति नहीं थी । मैं भी अपना बग लेकर उतर गई । पानी बरस रहा था, पर मैंने साथ में बरसातों रख ली थी उसीको आदकर मैं तजी में भुवाली की एक परिचित पगडण्डी की ओर मुड़ गई । मेरी एक विधवा भतीजी भुवाली के स्कूल की प्रधानाध्यापिका थी । सोचा, वही एक दो दिन ज़िताकर ननीताल सौट जाऊंगी ।

सनेटोरियम का गेट दिग्गत ही पैर ठिठक गए । कितनी ही पुरातन स्मृतियों का कलश छलक उठा । गेट में लगे रेस्ट हाउस की कुरसी पर बैठी बालसखी कुसुमी का पीला चहरा फिर बड़े ताऊजी उसी कुरसी पर बड़े डाड़ी कुलियों की प्रतीक्षा में टुकर टुकर कभी मुँह देखते है कभी दहा को । कनछोपी ऊन की टोपी में उनका गोरा चेहरा किसी गोरे अंग्रेज सिपाही का सा लग रहा है । आखें बार बार भरी आ रही हैं । जानते है, एक बार सनेटोरियम की उस ऊंची छढाई को चढ़कर बिरस ही रोमी उसका उतार उतरत हैं । कुसुमी भी नहीं उतरी । बड़े ताऊजी को तो गलपिंग टी० बी० या, तीसरे ही दिन वह जीवन का सबसे सुखद उतार उतर गए ।

आज भी वह छोटा सा हवादार कमरा, मोटर की सड़क से लगा बस ही खड़ा है । मृत्यु पथ के न जान कितने यात्रिया ने इसी कुरसी पर क्षण भर को बिश्राम किया है । सामने जंगलात का एक छोटा सा नया प्रनीक्षालय बन गया है । सनेटोरियम को जाने वाला पथ अब मरीजा के लिए मंत्री का आह्वान लिए प्रशस्त बाहे फैलाए सड़ा है । पहली सकरी मो पगडण्डी वही रो गई है । उसी प्रशस्त पथ से सरासराती एक जीप, तजी से फिसलती मेरे पाम आकर अचानक रुक गई । सिर पर बैजनी चटक स्काफ बांधे, लाल कसी जौन और बाल कार्डिगन में दो हाथों में फलो और अण्डा से लदी फली एक महिला उतरकर झाड़वर को कुछ आदेश देने लगी—“साब को हमारा सलाम बालना बहुत उहुत । कहना, तीनों मरीजों का स्पूटम हम कल भर्जेंगे ।” जीप दनदनाती वापस चली गई ।

महिला ने शायद अब तक मुँह नहीं दखा था । हाथ में बॅग लिए मुँहे पेड़

के नीचे खड़ी देखा, तो लपक आई—'किसीका बगला ढूँढ रही हूँ क्या? कौन आई हेल्प यू?' वह मुसकराई और फिर हाफने लगी। सासो के उतार चढ़ाव के साथ-साथ कभी उसकी दाहिनी छाती तराजू के पलटो की भाँति ऊपर उठ रही थी, कभी बाँध।

स्पष्ट था कि उसने मुझे नहीं पहचाना। पहचानती भी कैसे? सन ४३ में फ्रॉक पहनने वाली जिस लड़की को तोप ने देखा था, अब उसकी लड़कियों ने भी फ्रॉक पहनना छोड़ दिया था। पर तोप जरा भी नहीं बदली थी। वही गोल-गोल मासल ठुड्डियाँ विभिन्न सरिताओं की जलधारा की भाँति उसके असीम वक्षोर्ध्व में मिलकर एकाकार हो गई थी। सजन का शोक, शायद बड़ती उम्र के साथ-साथ और बढ़ गया था। गले में नक्सी मोतियाँ की माला थी। होठों पर गहरा लिपस्टिक था। छाती अब भी तोप से तीन कदम पहले चल रही थी। सैंड की तीव्र सुगंध क्षण भर में बोहड़ पथ को महका उठी। तभी तो छोटी भाभी कहती थी—'यह तोप तो अंग्रेजी साबुन की बूँटी सी महकती है।'

'किस बगले को ढूँढ रही हो, हनी?' उसने दानो टोकरियाँ नीचे रख दी और न हे कमाल से पसीना पोछत पोछत फिर पूछा।

मैं जोर से हस पड़ी—'पहचाना नहीं, तोप? देखो, मैं कौन हूँ?'

बस, फिर तो तोप बमगले बरसान लगी—'ओ माई गॉड, तू यहाँ? इतनी बड़ी सी! शादी भी हो गई! क्या कहती है, लड़कियाँ एम० ए० में हैं? हे मेरी माँ मरियम, क्या जमाना इतना गुँजर गया? कहा है? के कितने बच्चे हैं? क्या कहती है, बड़ी के लड़के सुरिया के दो बच्चे हैं? लो, सब ही ने घोंसल बना लिए, एक मैं ही हुरामजादी तोप की तोप रह गई! इतना कमाती हूँ, बच्ची, पर कहते हैं ना कि हिजडे की कमाई मुँह मुँहाने में जाती है, एक पसा भी क्या बच पाया है! चल चल, अब भतीजी फतीजी के यहाँ नहीं जाने दूँगी मैं! मेरे बगले में चलना होगा!'

वह अपने अंगुल प्रश्नों की गोलाबारी से मुझे छेदती अपने बगले में खींच ले गई।

सात लम्बे लम्बे बाज के वृक्षों से घिरा उसका बगला 'सेवन ओवर्स' चारों ओर से सेब के पेड़ों की आड़ में भी घिरा था। नीले, ऊँचे, पीले पहाड़ी फूलों की लम्बी कतार की कतार गोलाई से पूरे बगले की परिभ्रमा भी कर रही थी। द्वार पर दो बड़े बड़े लाल-बाले रंगे पीपों में टाइगर लिली भूमि रही थी।

फौज से छुट्टी पाकर तोप वहीं बस गई थी। "यही रेस्ट हाउस है मेरा।" उसने अपने सुंदर बगले को गव से देखकर कहा—'जिन मरीजों की सनेटोरियम से छुट्टी मिल जाती है, वे ही यहाँ आते हैं। कभी कभी बीमार मरीज भी निगोडे गिडगिडान लगते हैं, तो उन्हें भी ले लेती हूँ। हर मरीज से पूर सीजन

की फीस है मेरी एक हजार । खाना पीना, फल, दूध, अण्डा, घोबी, सब उसीम । इतना सस्ता है इसीसे मेंड बकरियो का सा एव भुड जुट जाता है । पर मेरे यहा दो सस्त पाब दिया है । एक ' उसने अपनी मोटी अगुली दूसरी फली हथेली पर चट से मारी — ' औरत मरीज, एकदम नो । नम्बर दो, किराया पेशगी । कही मरीज बीच मे ही चल बसा तो खनम मामला । पर एक प्राघ मरीज को चरिटी से भी लेती हूँ मैं । ' आजकल एक है बचारा, एम० एस सी० मे फस्ट क्लास फस्ट रिसच कर रहा था कि यह रोग लग गया । सनेटोरियम के लिए पैसा नहीं था तो हम बोला—'कोई बात नहीं, बाबा, इधर चला आओ । सनेटोरियम के पास दिल नहीं, ताप के पास बहुत बड़ा दिल है । ' "

ठोक ही कहा था तोप ने दिल उसका बहुत बड़ा था, पर केवल पुरुषो के लिए । मुझे उसने अपने चारा मरीजो का परिचय कराया, तो मैं दग रह गई । कौन कहेगा ये बीमार है । लाल सुख चेहरे भरे-भरे हाथ-पैर और मस्तानी चाल । "इनको तुमने पिछले साल देखा होता तो अब क्या कहूँ । बटा, हरदीप, अपना ग्रुप तो ल आओ जरा । "

तोप बड़े उत्साह स दिवान पर बैठ गई और मुझे भी खीचकर बिठा दिया ।

तिकोने चेहरे, तिकोनी आखा और तिकोने जूड़े वाला सरदार हरदीपसिंह जो लम्बी दौडो म ससार भर के रिकाड तोडने के चक्कर म यह साधातिक रोग पाल बठा था, मिनटा मे अपनी लम्बी टांगें चलाता, एक रग उडी सी तसवीर ले आया । चार डाडियो मे सचमुच ही चारो के चेहरे ऐसे लग रहे थे जस मरयी म बने मुँह हो । ' देखा ना । ' हो होकर तोप हसी । "डा० खजान ने इहे दुनिया मे सिफ चार महीने रहने की इजाजत दी थी, पर तोप ने इहे पूरी जिन्दगी इनाम म दी है । दवा जानती हो, क्या ? बकरी का दूध और सेब का रस, द्रा ला ला सा द्रा ला ला । ' तोप अपनी मोटी कमर को दोना हाथो से पकड डोलक सा बजाने लगी । चारा मरीजा के चेहरो और शरीर पर कही रोग का चिह्न मात्र भी नहीं था ।

लम्बी टांगा वाला हरदीप, सांस्कृतिक दल मे रूसवासियो को अपन मनो हारी कत्यक से मोहनवाला पतली कमर छरहर शरीर का धनी मगनदास छगन दास पटेल, चौरस काठी का रावेश्याम माहेश्वरी जिसे तोप 'मिजट' कहकर पुकार रही थी । जिसने मेरा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया वह था राजेन्द्रसिंह । चारो मरीजो म वही सबसे चुपचाप था और उसक धालीन व्यवहार को देखकर मैं मन ही मन समझ गई कि वही तोप की चरिटी का दोन याचक था । तोना मरीज मडक की भांति फुल्लत तोप की टोकरी म खुदर खुदर करत कभी सेब निकालकर भकोस रह थ, कभी स्ट्राबरी के लिए तोना

छीना झपटी कर रहे थे ।

“ममी तुम आज फिर ठगी गईं ! निहायत खट्टा सेब है ।” तोप का मिजेट दो बड़े बड़े सेब ले, उचककर खिड़की पर चढ़कर खाने लगा था । ‘क्या भाव लाई हो, ममी ?’

“नो मिजेट, तुमको भाव से क्या ? चुपचाप खाओ ।” तोप ने उसे झिड़क दिया, तो वह खिलौने के क्यूपिड की मुद्रा में दोनों हाथ गाल पर धर कर हँसा हो गया ।

‘बनिया है ना, ममी, बल बकरी से भी उसके दूध का भाव पूछ रहा था ।’

सरदार की रसिकता पर तोप हसती हसती पूरा दिवान हिला उठी । “ओ सरदारा तू किसी दिन हसाते हसाते मेरी जान ले लेगा ।” तोप मुँहसे कहने लगी—‘हमारे सरदार से कभी सरदारों के चुटकुले सुनो । जो मझा सरदार से सरदार के चुटकुले सुनने में आता है, वह भीर कही नहीं क्या, है ना राजेद्र ?’

‘हूँ’—कहकर राजेद्र अपना मोटा चश्मा निकालकर पोछने लगा ।

तोप का प्रतिभाशाली वैज्ञानिक वास्तव में सुदृशन था । चश्मे को उतारते ही वह नितांत भोला किशोर लग रहा था । सब के रस और बकरी के दूध की महिमा से उसका चेहरा भी रंग था, पर लड़का स्वभाव में ही कुछ उदासीन प्रकृति का लग रहा था ।

‘बड़ा शर्मीला है हमारा राजेद्र ।’ तोप कहने लगी—“भगवान न चाहा, तो किसी दिन फ्रिजिडस का नोबल प्राइज लगा ।”

मैं दो दिन तोप के साथ रही और उसके सबका मौलिक सेनेटोरियम के सरल वातावरण को देखकर मुग्ध हो गई । अपने मरीजों पर वह प्राण देती थी । बगला ऐसा साफ सुधरा रखती थी कि पक्ष में चेहरा देख लो । एक आया भी दो बैरे । खाने के कमर की सजावट और बैरा की बुराक बर्दी देखकर समय के पूर्व ही भूख लग आती थी । सन्तुलित भोजन का घड़ी के काटे के साथ वह स्वयं अपने हाथों से परोसती । हरदीप, अण्डा क्या छाड़ दिया ? मिजेट माहेश्वरी, तुमको चुकंदर खाना ही होगा । एण्ड मू, पटेल, तुम फिर प्लेट पर काटे चम्मच से जलतरंग बजाने लगा ?’

संगीत प्रेमी पटेल बीच बीच में सांस्कृतिक दल के अपने प्रवासवालीन जीवन की स्मृतियों में बुरी तरह उलझ जाता । खाना छोड़ वह सचमुच काटे चम्मच से जलतरंग बजाने लगा था ।

‘ओह, सगरी, ममी, बेरी सारी ।’ वह धप धप पूरा मुँह चिंचोड़ने लगता ।

‘एण्ड यू माई एजिल तुमको क्या अपनी यूनिवर्सिटी याद आ रही है ? इसको तो अपने हाथ से खिलाना पड़ता है ।’ तोप अपने साइले वैज्ञानिक की कुरसी के पास जाकर जम जाती ।

मैं चलने लगी तो तोप के चारो मरीज मुझे छोड़ने बस स्टैंड तक आए । उन सबको साथ लेकर नैनीताल आने का निमन्त्रण भी मैं दिया, पर तोप नहीं आई ।

उसी वक मेरे पति की बदली आगरा हो गई । सात घाठ महीन बाद एक बड़ा प्यारा सा क्रिमस कांड आया तो मैं आश्चर्य से खोला । बड़े दिन के अवसर पर मुझे याद करने वाली तो एक ही थी । तोप ही का था, वक म किसलती बफ गाडी को खींचत हिरनो का एक प्यारा सा जोड़ा था, नीचे लिखा था— शुभकामनाओ सहित तोप और राजेन्द्र ।’

मेरा माथा ठनका, राजेन्द्र ही क्या ? हरदीप, मिजेट और पटेल कहा गए ?

हो सकता है, तीना रोग मुक्त होकर अपने अपने घर चले गए हो और राजेन्द्र अभी स्वास्थ्य सुधार के लिए रुक गया हा । पर आठवें दिन एक तार आया— “आगरा का ताज देखने हम आ रहे है ।” फिर वही तोप और राजेन्द्र ।

बात कुछ बनी नहीं । पूर्णिमा के दिन ताज देखने राजेन्द्र के साथ तोप । पर हो सकता है मन बहलाने ले आई हा । दिसम्बर मे क्या भुवासी मनुष्य के रहने लायक रह जाती है ? फिर तोप अपने मरीजो का कितना ध्यान रखती थी । यह ठीक था कि न उह दवा पिलाई जाती थी, न बुखार नापा जाता था, पर उनकी प्रत्येक सुविधा असुविधा को वह डायरी मे नोट कर रखती थी । यही नहीं, प्रत्येक रविवार को वह अपने कुछ मनचले मरीजो के लिए गल फ्रेंड भी बटोर लाती थी । उसकी भतीजी पदमावती राँबट वही अध्यापिका थी । इतबार के दिन वह अपनी एक दो सहेलियो को ले आती थी । “एण्ड माई बायच हैव ए गुड टाइम”—वह कहती । जो अपने मरीजो का इतना ध्यान रखती थी, वह उनम से एक प्राध को ताज दिखाने ले भी आए, तो क्या दोष था । फिर तोप मेरी बचपन की स्मृतियाँ का स्मारक-स्तम्भ थी । मैं स्वयं ही कार लेकर स्टेशन पहुँच गई ।

ट्रेन से तोप राजेन्द्र के साथ उत्तरी और मेरे गले के नीचे एक कड़वी घूट उतर गई । यह तो चार मरीजो को जीवन सुधा पिलान वाली तोप नहीं थी । यह वही पुरानी तोप थी जिसके नाम का गोदना गुदाए अभी न जाने कितने गोरे सिपाहो विदेश की कब्रा मे बचन करवटें ले रहे होंगे । होठो पर तेज लिप पस्टिक था, गले मे नक्ली मोतिया की माला कानो मे फलमलाते बुंद और चटख शोख रंग की लाल साडी । साथ मे राजेन्द्र था—वही स्वास्थ्य से दीप्त

वैशोय की मरीचिका, निकट से देखने पर उदास पीला चेहरा और निष्प्रभ आँखें। रोग ने शरीर को छोड़, फेफड़ों का कक्ष रिक्त कर उन उदास आँखों में शायद डेरा डाल दिया था।

तोप ने अपने स्वभावानुसार मेरे दोनों गालों को अपने ईसाई प्रेम का प्रदर्शन कर, चटाख चटाख शब्दों से चूमा और बोली—‘अपने शाहजहाँ को आगरा का ताज दिखाकर हुनीमून इनआगरेट करेगा, है ना डालिंग?’—वह राजेद्र का हाथ पकड़कर बोली।

मुझ काटो तो खून नहीं।

वहाँ पचास वर्ष की अघेड़ तोप, कहा अपने यौवन के हीरे सा दखने वालों का आँखें चौंधियाता वह सुदर्शन युवक। क्षण भर को मुझ अपने मर्यादाशील परिवार का ध्यान आ गया। ईश्वर की दया से पति किसी काम से दिल्ली गए थे, पर बच्चे। सयानी लड़कियाँ थी कया कहूँगी, ममी की दोस्त भी वैसी हैं। हुमा भी ऐसा ही। घर पहुँचते ही मेरी लड़कियाँ मुझ आकाश में खींच ले गई—छि छि ममी सब नौकर भी हस रह है। कितना हैण्डसम है एकदम रॉक हडमन। और वह खुसट बुडिया समझ कया रही है अपने को।”

मैं उस कस समझाती, पचीस वर्ष पूर्व तोप अपने को जिजर रोजम समझती थी और आज भी वह अपने का लिज टेलर से कम नहीं समझ रही होगी।

टोक कहती थी छोटी भाभी होली का अदृश्य अमीर गुलाल वह प्राणों में भरकर लाइ थी। कभी लाल कभी पीली और कभी हरी साड़ियों में गिरगिट का सा रंग बदलती वह नय पति के साथ दिन रात घमती रही। मैंने भी उनके आतिथ्य में त्रुटि नहीं रहने दी पर राजेद्र खाने की मेज पर अभी भी सहमा रहता। समोसा उठाता तो तोप दगने लगती—नो डालिंग, नो समोसा। तली-भुनी चीजों का परहेज करना होगा। अभी पेचिश से उठे हो चाय लोगे? मस्ट यू? न हो तो एक प्याला दूध पी ला चाय तुम्ह ऐसी नहीं करती।”

ताप के युवा वैज्ञानिक पति की स्वाभाविक भूख की अस्वाभाविक मृत्यु पर मुझ बेहद अफसोस होता, पर मैं चुप रह जाती। तीन दिन का फलाहार करा, बला कुबेला ताज दिखा तोप ने अपने शाहजहाँ को अघमरा कर दिया। चौथे दिन वह विचित्र जोड़ी चली गई।

य ववाद का एक पत्र लिखकर ताप ने फिर साठ खींच ला। एक वर्ष तक मुझ उसका कोई समाचार नहीं मिला।

दूसरे वर्ष मैं बहान की लड़की की गालों से नीट रही थी। लखनऊ के रिटायरिंग क्लब में एक रात काटनी थी। स्टेशन मास्टर ने कहा “यहाँ ता बड़ी हैवी बुकिंग रहती है, वैसे एक कमरे में एक पलंग पाली है। यदि आपका कोई आपत्ति न हो तो रह सकती हैं।”

मैं इतनी थकी थी कि कमरे के दूसरे पलंग पर कौन है, स्त्री या पुरुष, मेरे ध्यान में ही नहीं आया।

कमरे में पहुँची, तो घीमी रोशनी जल रही थी, कमरा बहुत बड़ा और हवादार था। आसपास दो पलंग थे। एक पर सिर से पैर तक चादर ओढ़े कोई खरिटे ले रहा था। शरीर के आकार से वह निःसंदेह पुरुष ही था। पोस्टमाटम के लिए आई लाश की भाँति उसका पेट रामढोल सा बीच में बहद फूला फूला लग रहा था। एक अपरिचित पुरुष के साथ एक ही कमरे में भगल बगल सोने में मेरा सनातनी हिंदू सस्कारी चित्त बुरी तरह झिझक उठा। क्या करूँ पैसे भी तो भर दिए थे। पर छि, इस कमरे में तो मुझसे नहीं सोया जाएगा। इससे तो बेटींग रुम का आराम केदारा ही भला। मैं जाने ही का थी कि एक इजन गरज उठा।

पास के पलंग पर अपरिचित पुरुष हड़बड़ाकर उठ बैठा।

मैंने देखा वह अपरिचित पुरुष नहीं, चिरपरिचित तोप थी।

“ओ माई ! हाय मेरे मसी तरा मितारा खुशद हो ! जिसे जहा चाहा मिला दिया ! किसने सोचा था कि ऐसे मिलेंगे !”

“तुम क्या बीमार थी, तोप ? कितना बदल गई हो ?” मैं पूछा।

बिना मेकअप के तोप फीकी फीकी ही नहीं, बेहद झटकी लग रही थी।

“तोप और बीमार ?” वह हसी—“वह तो थोड़ा स्ट्रेन पडा है डालिंग ! हरिद्वार से लौटी हूँ ना, हरिद्वार से !”

मैं चौंकी। निःसं इतवार को गिरजा जानेवाली, दिन में अस्सी घंटे चटाख चटाख बाइजिल को चूमनेवाली तोप हरिद्वार कैसे गई ?

“राजे के फूल चढ़ान गई थी हम !” वह एक लम्बी साँस लेकर बोली—“तुमको क्या लिखती, इधर बहुत जिंदी हो गया था। परहेज जरा भी नहीं करता था। न दकरी का दूध, न सेव का रस। बस दिन भर चाट और हिंदी सिनेमा ! हमने कितना समझाया, देखना है ना अग्रेजी पिक्चर देखो। पर नहीं, यही सस्ता इक्साइटमेंट उसे ले गया। एक एक दिन का तीन तीन शा !”

तोप के अनुयायन की लगामों से क्या घोड़ा आखिर बिदक हो गया।

‘दो दिन बीमार रहा, बस ! अब देखो हरदीप, मिजेट और पटेल, तीनों के फेफड़ों में भूसा भरा था वह हमारा आदर माना, तो ठीक होकर अपना अपना घर गया। यह जिंदी मरने से पहले बोला—‘हमारा फूल लेकर हरिद्वार में बहाना !’ एक बार साँचा अपने ग्रेवयाड में खूबसूरत सी सगमरमर की पत्त बनवा देंगे पर उसकी मरजी के लिसाफ उसकी आत्मा का रोक्नी भी तो तब्र स निकल कर हरिद्वार ही भागती !”

उसका गला भर आया। वह चश्मा उतारकर आँखें पालने लगी। डेंपर

उतारकर उसने मेज पर धर दिया था। धीमी रोशनी में बहुत बूढ़ी लग रही थी।

मुझे तरस आ गया— 'चलो, तोप, तुम मेरे साथ चलो। बच्चा मे जी बहल जाएगा।' मैंने कहा।

"यैक यू डालिंग पर मैं अकेली कहा हूँ। मुदा बाप क्या मुझ अकेली रहने देता। एक गरीब मरीज उसने फिर भेज दिया है। फिर चरिटी। टी० बी० नहीं है, थ्रिरिटी थी। अब विल्कुल ठीक है। बड़ा होनहार लडका है सैम्युअल, मेडिकल कॉलेज में आठिरी साल है। इस साल आराम करेगा। अगले साल जाएगा। ईसू न चाहा तो कभी सजरी में नोक्स प्राइज लेगा। उसीको घर सौंप आई हूँ। फिर मिलेंगे हनी।" वह सुबह सामान बटोरकर चली गई।

जब तक आगरा रही, हर तार को डर डरकर खोलती। क्या पता, तोप फिर ताज देखने आ जाए, पर तोप नहीं आई। अचानक फिर क्रिसमस के दिन एक प्यारा सा कांड घाया। अब के तार के खम्भे पर खोच से चाक मिलाय कबूतरों का एक जोड़ा था। "तुमकामनाओं के साथ—तोप और सैम्युअल" अवश्य यह वही अंधूरा डाक्टर होगा। पिछली बार देश का दुर्भाग्य था कि एक हानहार वैज्ञानिक नहीं रहा और अब यह डाक्टर। पर इस बार यदि तोप के नये जीवन साथी ने उससे पहले समार छोड़ने की घण्टा की तो पहले वैज्ञानिक की भाँति वह तोप को छल नहीं पाएगा। सगमरमर की फूला से ढकी कदम नीचे दबी उसकी जिद्दी आत्मा को तोप हरिद्वार की ओर भागने नहीं दगी। वही भाग गई, तो उसका प्यारा मुदा बाप क्या उसे कभी अकेली रहने देगा।

मधुयामिनी

पूरे शहर में विवाह लग्नों की बाढ़ सी आ गई थी। इस वष भाद्रमास में देवगुरु सिंहस्य हो जाने से दो जून का विवाह लग्न ही अंतिम लग्न है ऐसा ही कुछ घोषणा कर कूर्माचल के गण्यमाय पंडितों ने क्यादायग्रस्त पितामों की नींद हराम कर दी थी।

परंपरा से कूर्माचल में सिंहस्य गुरु लग्नादि के लिए ब्रजित रहा है, फिर 'पुत्र भ्रात कलत्राणि ह्याच्छीघ्र न सशय' सुनकर अधिकांश धर्मपरायण सरल कुमायूवासियों की जैसे साप सूघ गया था। एक तो वसे ही महगाई न सबका जीना दूभर कर दिया था, उसपर विवाह की इस महामारी ने तो देखते ही देखते एक से एक समृद्ध परिवार की मिट्टी में मिला दिया। लग रहा था कि सन भठारह वाली वही इ पलुएजा महामारी फिर से फैल गई है जिसने कभी नैनीताल की भाषी जनसंख्या को चुटकियों में साफ कर धुन दिया था। गेहूँ के गगनचुम्बी भाव का यह हाल था कि एक क्विंटल गेहूँ यह तक पहुंचाने के पश्चात् हूँटपुष्ट गहस्वामी की वयस के भी चार वष अनायास ही घटकर रह जा रहे थे। अनाज विवाह के मुकुट बना घोड़ी, गानेवाली पेनेवर गवनारियों की फीस, सब्रम आश्चर्यजनक रूप की तजी का मूल कारण पंडितों द्वारा उद घोषित यह नवीन विवाह ब्रजट ही था, इसमें कोई सदेह नहीं। बैटवालों का तो पूछना ही क्या था, फटे से रामढोल की एक थाप ही असीतन भठानी में पड़ रही थी। वह तो भगवान ही की कृपा थी कि दाम दशम और तुरी-नगाडे का चलन पहाड़ के शादी ब्याह से स्वयं ही बड़ी समझौतारी से उठ गया था, फिर भी हलवाई का एक एक बड़ाह किसी प्रसिद्ध वैश्या के मुजरे से भी महंगा पड़न लगा था। जितने में पहले सोहनहलवे की एक बट्टी आती थी, उतने में तो निगोडा एक बताशा तुल रहा था। यहां तक कि एक सडिमल सी पचनी की फूलमाला भी सवा रुपये में बिकने लगी थी। शहर के कई मध्यवर्गीय मुरद जिना फूलमालाओं का ही सूनी गरदन लिए बड़ी विवशता से महाप्रस्थान के पथ पर चले जा रहे थे। बचारे करत भी क्या, यहां नौसो ही की गरदन के लिए माला अप्राप्य हो उठी थी उह कौन पूछता। फिर भी कितनी ही महगाई हा और कितना ही अभावग्रस्त जीवन, ज में, विवाह, मरण भला कभी रोके रकत है ?

सगता था, पूरा शहर ही विषम विवाह ज्वर से ग्रस्त हो गया है। दायें दायें, जहा से देखो, वही से टेढ़ा बाबा, मोटा ठिगना, काला मोरा, एक न एक नौशा सेहरा बाधे मस्ती से भूमता चला आ रहा था। स्वयं परमपुरुष ही शायद भरतार धन पूरे शहर को इस विवाह महोत्सव में भाकण्ठ डुबो रहा था कि अचानक पूरे शहर में खलबली मच गई। खलबली मचने जसी बात भी थी—एक तो वैसे ही दुकानदार परिस्थितियों का लाभ उठाकर उपभोक्ता वग की पीसे दे रहा था, उसपर एक सवया अपरिचित, ऐसे प्रवासी परिवार ने उस कोठी को मुहमागे दाम पर अपनी कन्या के विवाह के लिए ले लिया, जिसकी शहर से दूरी, पानी का अभाव, सर्वोपरि ऊँचा किराया देख आज तक किसीका उसे लेने की हिम्मत नहीं पड़ी थी। एक बार एक विदशी दूतावास के कुछ उच्चपदस्थ अधिकारी आकर कुछ दिना तक कोठी गुलजार कर गए थे, तब से वह खाली ही पड़ी थी। वैसे तो सीजन आने पर नैनीताल में यदि चार बासा की टटरी पर भी छप्पर डाल दिया जाए तो वह भी बड़ी आसानी से अच्छे बिराये पर उठ सकता है, पर इस कोठी की तो शान ही निराली थी। उसपर समझ मकान मालिक की भयंकर पहाड़ पर बिलखी दस कोठिया थी, जो उनके लिए सरकारी दफ्तरो का आवास बनी, दिन रात साना उगलती थी। शायद इसीसे उन्हें इसकी कोई चिन्ता भी नहीं थी, किराया पर उठें या न उठें। मैंने एक बार उनसे कहा भी था, “थोड़ा किराया कम कर छोटी सी पानी की टकी लगवा दीजिए, फिर देखते ही देखते किराये पर लग जाएगी। अब बड़ी बड़ी कोठियों का मार्केट नहीं रहा। अब तो लोग फलटनुमा चीज ही पसंद करते हैं, जिसको न तो सजाना कठिन होता है, न साफ रखना।”

“हाथी का भी तो अब मार्केट नहीं रहा, पर क्या वह अब भी खच्चर के भाव विक सकता है?” कहकर वह अपनी बर्मी सिगार फूँकने लगे थे। मैंने फिर कुछ नहीं कहा। इतना मैं जानती थी कि न चतुर शाहजी किराया कम करेंगे, न कोई इस हाथी को सरीदगा। पर मेरी धारणा निर्मूल निबली।

एक दिन सुबह उठी, तो देखा, तीन चार नौकर एक साथ सूखी क्यारियों की तरफ कर रहे हैं, वही झाड़ फाँसों की धूल झाड़ी जा रही है और वही मोटे धूल भरे गलीचे कालीनो को निममता से पीटा जा रहा है।

“तुम कितना किराया कम करने को कह रही थी,” शाहजी ने बड़े गव से घोषणा की, “हमने कुछ और बढ़ा दिया, फिर भी पूरे सीजन का किराया भर केवल आठ दिन रह यह प्रवासी परिवार कयादान करते ही फूलपुर से उड़ जाएगा।”

मेरे बगले से इस कोठी का फासिला कठिनता से तीन गज का था और अपने वरामदे में पंद्रह मिनट तक खड़ी होने के साथ ही मैंने इस प्रवासी परिवार

की आर्थिक स्थिति को माप लिया। परिवारसीमित था और गृहसदस्यों से अधिक सख्या भारतीय दास दासियों की थी। किसी भी गृह का भेदी विभोषण या तो गृह का भत्य होता है, या बालक। पर बालक तो इस परिवार में थे ही नहीं, और नौकरो की भाषा तो दूर निर्विकार चेहरो की एक एक रेखा किसी दुःख पहेली से कम नहीं थी। उन चीनों मगोल चेहरो पर विलासी जीवन की अमित छाप ही बस पत्ते पड़ती थी। छोटे मोटे दुम्मे से ठिगने कद के बातिव की छपी लुगी पहने कई नौकर भोर होत ही जलपान के आयोजन की भूमिका रचन में जुट जाते। कहीं बड़े से हण्डे में भड़े उबाले जा रहे हैं। एक विचित्र आकर की विराट गिला पर मसाले पीसे जा रहे हैं। दो-तीन मोटी मोटी दासियाँ लुढ़कती फुड़कती पर फड़फड़ाती पलायनशीला 'टर्की' का पीछा करती खेतों की सीढियाँ फाद रही हैं। उधर मादक मसालों की खुशबू जबबह होत बकरेकी मिमियाट, टर्की का कण विलाप मुझे वहाँ पूब के उन रियासती घटालाके प्राण में खींच ले जाता, जहाँ ऐसी ही मादक खुशबू थी। टर्की के पीछे लुढ़कती ऐसी ही मोटी मोटी कुटिल मुस्कान बिखेरती दासियाँ थी और टर्की का ऐसा ही सुपरिचित हृदय भेदी क्रान्त था जिसने मेरे शवक की अबूझ चटोरी जिह्वा पर भी सदा के लिए सयम का ताला डाल दिया था। चेष्टा करने पर भी मैं आज तक टर्की का बहुचर्चित स्वादिष्ट गोश्त जीभ पर नहीं घर सकी। आज भी मुझे यही लगने लगा कि जैसे महाराज औरछा का गोवानीज खानसामा ही अपनी विचित्र भाषा में बुदबुदाता टर्की की गदन पर छुरी फेर रहा है, और वह कण स्वर में विलाप कर रही है। पर इस परिवार के गृह-स्वामी को इस विलाप की कोई चिंता नहीं थी। वह शायद नित्य सुबह के नाश्ते में समूची टर्की खाते थे। बाहर ही खुबानी का एक बड़ा सा छायादार पेड़ था। उसीके नीचे मखमली लाल गद्दीदार कुर्सी पर वह आकर बैठत तो शरीर की पूरी चरबी बड़े बड़े धक्को में नीचे लटक जाती। मैंने कई मोटे व्यक्ति देखे हैं— किसीका चेहरा मोटा होता है, किसीकी गरदन, किसीके पूरे शरीर का मांस उदराणव में ही समाकर सहराता रहता है, किसीके हाथ पाव ही देखने बाल को अप्रतिभ कर देते हैं पर यह तो विचित्र मुटापा था। लगता था शरीर के किसी भी भाग पर छुरी घुमात ही खून का फवारा किसी टूटे नल की सी फुहारें छोड़ता रक्तकुण्ड की सृष्टि कर देगा। पर तिवारी जो का कण्ठस्वर उनके चौकोर शरीर से एकदम ही बेमेल था। नहा सा क्षीण कण्ठस्वर ऐसा था, जैसे कोई किशोर बालक कच्चे मीठे गले से टटुक रहा हो। मेज पर नाश्ता लगते ही वह बड़े अर्धय से मुझे बाध की भाँति टूट पड़ते और पल भर में ही टर्की का अवशेष अपने दुम हिलाते ग्रेहात्तण्ड के सामने बिखेर देते।

खा चुकने के बाद एक ताड़ सी लम्बी दासी आकर नित्य उनका मुँह धुलाती स्वच्छ नैपकिन बढाती, फिर चादीकी तख्तरी में घरी टूथपिक की हाथीदात की

कर सकता, जो समाज में रहकर भी अपना अस्तित्व समाज से छुना रहना चाहता है। उसकी ग्रह-भावना उसे एक दिन ठीक वैसे ही निगल लती है, जैसे सर्पिणी स्वयं अपने ही से जन्म ले लेती है। एक तो तिवारीजी ने अपने वैभव का चुगा डालकर शहर के पूरे व्यापारी वर्ग को फास लिया था। सीजन माते ही नैनीताल में दूध-दही समृद्ध गृहों के बालक और रोगियों को भी कौरेमीन के अनुपात में लगने लगता था, उसपर दो रुपये किलो के दही को चार रुपये की मुहमागी बोली पर उठाकर तिवारीजी ने पूरे शहर का रेट बिगाड़ दिया था। पुलिस बैण्ड ही नहीं, रानीधेत के कुमाऊ हाईलैण्डर भी भी एक एक गरदन पर इनका रिजर्वेशन स्लिप भूलने लगा था। एक तो हलवाई वैसे ही मंत्रियों की भद्रा दिखाने लगे थे, उसपर तिवारीजी ने सात सात प्रमुख हलवाईयों को बपाने की गहरी रकम खिला पिलाकर पालतू जानवर सा बांधकर रख लिया था। बेला के एक सौ सत्ताइस गजरो का एक साथ भाँडर हो गया था। पलट के और छोर सञ्चा होत ही जो बेला मोतिया की गमक से सुवासित हो उठत थे, अब फीके थे। वही एक बेला की कली भी सूखने की नहीं मिल रही थी। जिस लगन में तिवारीजी की तमाकधित कया का विवाह था, उसी लगन में शहर की और भी बीस पचीस धादिया थी—एक तो वही अंतिम लगन था। पता नहीं, बहुस्पति भगवान को भी क्या सनक सवार हुई कि भाव देखा न ताब, टप से जाकर सिंह राशि में बैठ गए। और फिर तिवारीजी भी तो अज्ञानक भाकर नैनीताल की प्रत्येक विवाहयोग्य कया की राशि पर किसी झूर ग्रह की भाँति जम गए थे। इसी बीच अनेक अणप्रिय समाचारों का पूरा पैला काने पर लटका, शहर का कुख्यात प्रेस रिपोटर नब्बू मास्टर मोहल्ले में आ घमका। दस मिनट के लिए प्रवासी तिवारीजी की हजामत बनाने गया और उन्हें मूडकर ले आया।

बकाश से घ्राए है। लखपती ही नहीं, खगपति हैं। बर्षों पहले इनके पूज्य पिथौरागढ़ से जाकर धाईलैण्ड में बस गए थे। वही किसी प्रसिद्ध हिन्दू मठ के मठाधोश हैं। लाखों का तो पढावा ही चढता है। पाव बटिया वही ग्याह दी, अब सबसे दुलारी प्राखिरी बिटिया का कयादान करने स्वदेश पधारें हैं। बारात भी क्या ऐसी वैसी जगह से आ रही थी। 'ठेठ ल दन ल आ रही है, बीबी। जनवासे की पूरी हजामत का भार हमें ही सोंपा है तिवारी साहब ने। अभी उहीकी हजामत बनाकर तो आ रहे हैं हम।' नब्बू मास्टर ने एस लहजे में कहा, जैसे उसका उत्तरा, जो स्वयं देवराज इन्द्र के गाल का स्पश कर चुका था, अब ननीताल के अग्र किसी मानवीय गाल का स्पश कर चुछता को प्राप्त नहीं होगा। शहर के महिलावृद्ध का कुतूहल छलाने लेने लगा। कइ तो अत्यंत उत्साह से स्वयं ही काम पूछने भी चली गई थी पर गृहस्वामिनी ने न तो विवाह का निमन्त्रण ही दिया, न विशेष अभ्यथना ही की, एक बोरा प्याला पाय का

पिलाकर ही टरका दिया । जो भी हो, तिवारिन को उ हाने देख लिया, एक में ही रह गई थी । खैर, जिस दिन बारात आएगी, उस दिन तो बाहर निकलेंगी ही । जामाता को खील उठद परखने का पहाड़ी रिवाज तो जानती ही होगी तिवारिन । पर इसी बीच अचानक एक दिन मैंने मा बेटी, दोनों को एक साथ खिडकी पर खड़ी देख लिया ।

बाप रे बाप, तिवारिन थी कि पूरी इमारत । कहा पर कमर की परिधि और उदर के क्षितिज का आदि त है, कुछ समझ में ही नहीं आया । ठिगना कद, चमकता माथा और गोरा रंग । चेहरे की सुर्खी देखकर तो मैं दग रह गई । महा तो तो ही बेटिया ब्याहने में चेहरे पर हवाइया उठने लगी थी और दिन में ही तारे नजर आ रहे थे और एक ये थी, पांच बेटिया दनादन ब्याह कर छठी का क्यादान सिर पर नाच रहा था, फिर भी किसी शानदार हवेली सी बुल द खड़ी जगमगा रही थी । साथ खड़ी बिटिया तो गुलाब की ताजा खुशनुमा कली सी झूम रही थी ।

एकदम सीप का सा रंग, खूब कसकर बांधी गई कुछ-कुछ ऊंची चोटी और प्रत्यक्षा सी भवें । उतनी दूर से मैं ठीक से देख नहीं पाई कि उन भवों की कलात्मक सज्जा में विधाता का चातुर्य था, या स्वयं किशोरी स्वामिनी की चतुर प्रगुणियों का, पर जिसकी भी हस्तकला थी, वह नि सन्देह सर्वोच्च कोटि की थी । वह कठिनता से पंद्रह सोलह वष की होगी और शायद उसी वैशेष की अलहद लुनाई ने उसके सौम्य चेहरे के सौंदर्य को द्विगुणित कर दिया था । वह रात के वषड़ा म ही खड़ी थी । तग मुहरी का लस लगा पाजामा और ढीली बाहा के कुरते में वह मुझे किसी तेरह चौदह वष क चीनी बालक सी ही लगी । उसके चेहरे पर भी पीलिया रोग का सा पीलापन था । शायद ज म से ही मंगल देशावास न चेहरे को इस अस्वाभाविक रंग म रंग दिया था । चेहरे का मुख्य आकर्षण था उसका गम्भीर और उसकी तरल दृष्टि । कुछ ही क्षणा के लिए मैंने उसे देखा, पर फिर भी मुझे लगा, जैसे यह लड़का अपनी इ ही आखों क माध्यम से हसती है, बोलती है, पारचय लेती है और देती है । निश्चय ही ये चिडिया के स अघरपुट नितान्त आवश्यकीय बातें कहने का ही खुलते होंगे । उसकी मा ने शायद कुछ कहा और वह हस पड़ी । उसकी भुवनमोहनी हसी देखकर मैं मुग्ध हो गई । क्षणिक हसी म उसका न हा सा बकटूय चमका और उसी दिन समझ में आया कि क्यों ऐसे तनिक ऊंचे से गजदन्त को सौंदर्य का एक अंग माना जाता है ।

वास्तव म लदन की बारात के योग्य ही दुल्हन थी वह । इस सुंदरी पुत्री को देखने के बाद सडियल दम्भी तिवारी के सो खून भी माफ किए जा सकत थे । मा-बेटी थोड़ी देर भी खिडकी पर खड़ी रहती, तो मैं शायद वर्तालाप का

सूत्र स्वयं ही उन्हें पकड़ा देती, पर तिवारीजी ने अपने कच्चे गले की पुकार से दोनों को भीतर खींच लिया।

विवाह के केवल तीन दिन रह गए थे और इसी बीच तिवारी महोदय के निलज्ज, असम्य आचरण से पूरा पवतीय समाज क्षुब्ध हो उठा था।

क्या लाक पहाड़ी है, यह बोदा व्यक्ति जब स्वदेश में आकर अपने ही देश बघुआ को नहीं मोत सका। माना कि वह यहाँ के रीति रिवाजों से एकदम ही अनभिज्ञ है और किसीको भी नहीं जानता, पर अपने समाज में जब रहने आया है, तो उसे शिष्टाचार का महत्त्व तो समझना ही होगा। फिर शिष्टाचार का अस्तित्व तो प्रत्यक्ष समाज में अनिवार्य रूप से रहता है, चाहे वह स्वदेशी हो या विदेशी। जब वह अक्ल से जेब में ही दोनों हाथ छिपाए घूमत रहेंगे, तो उनसे हाथ मिलाएगा भी कौन? अब सात हस्तबाइया की बनी पालोभरी मिठाइयाँ क्या बाँटकर थाईलैण्ड ले जाएंगे?

तिवारीजी तक समाज का आग्रह न पहुँचा हो, ऐसा हो ही नहीं सकता था, क्योंकि उनके मुहलंगे नापित नम्बू को खूब जली कटी दाँतें सुना दी गई थी, पर तिवारीजी के कान पर ज़रा भी नहीं रेंगी। सदन की बारात भी गई और निमन्त्रणपत्र कही नहीं बटे। शहर के एक नामी होटल में केवल सात जनों की बारात ठहराने का प्रबन्ध पहले ही हो चुका था।

वर के पिता भी कया के पिता की भाँति पीढ़ियों पूर्व सदन में बस गए थे, इसीसे वर को छोड़कर अन्य सबके सतमुँहे चेहरे, सुनहले गाल और नीली भूरी आँखों में विदेशी सटका ही अधिक था।

'कया रे नम्बू।' हमारी प्रतिवेशिनी मुखरा गोदी दी न हसकर पूछा, 'हल्ला तो बहुत सुन रहे थे सदन की बारात का, आए हैं कुल सात' "

किराया भी तो इतना है, गोदी बीबी," नम्बू अपने नये प्रभु से इतना प्रभावित था कि उनपर किए गए प्रत्येक वार की झेलने अपने वाकचातुर्मी की ढाल को घट से खींच लेता था। 'अब हवाई जहाज का एक आदमी का किराया ही इतना है कि हम जसे तो उतने में दस बिटियाँ ब्याह लें।' पर नित्य बाल नाक से घुलघुली हसी की रस फुहारें छोड़ती, अपने बालबध्म्य की 'पथा का घो पाछकर बहाने वाली गोदी दी भी क्या कभी हसर मान सकती थी? 'जो भी कह रे, नम्बू, वर का बाप तो मुझे फिल्ली बाप लगै है। न बेटे स सूरत शक्स ही मिले है, न रग। गार सिपाहिया की पल्टन हो लग है मुझे तो। जरा पता तो लगाना, बाप असली है या नकली।"

नम्बू तुनककर खला गया और फिर नहीं आया। तिवारीजी लाय निमन्त्रण न भेजें, हम सबकी आस्था पर पट्टियाँ तो बांध नहीं सकते थे।

बारात आई और एक एक सिटकी पर एक साथ बीस-बीस मुण्ड जुट भिड़

गए।

बारात की सज्जा एवं स्वागत आयोजन में तिलमात्र भी त्रुटि नहीं थी।

रमोन बागजी भडिया की बदनवार से वर की डाढ़ी वैसे ही सधे हाथों से सजाई गई थी, जसे हर पहाड़ी दूल्हे की डाढ़ी सजाई जाती है और प्रत्येक प्रभाग पहाड़ी दूल्हे की ही भांति इस सुदृशन व्यक्ति को भी पूरा कार्टून बना दिया गया था। पोली चपकन, लाल सिंदूरी रेखमी धोती कमर में पट्टा सेहरे का ऐसा बुर्का जिससे साख्ताक भाव करने पर भी कभी एक चौथाई मूछ पल्ले पड़ती, कभी एक तिहाई नाक। सलाट कितना चौड़ा है, यह देखने की भी कोई गुंजाइश नहीं। पिसे चावलो की असह्य बुदकियों से पूरा भाषा ऐसे रंग दिया गया था था, जसे जोधपुरी धुनरी की छपाई हो। सिर पर बसकर बघा मुकुट, जिसमें प्रकृति गणेशजी की त्रुटिपूर्ण टेढ़ी सूड बसकर बांधे जाने से और भी टेढ़ी लग रही थी। मुकुट के पीछे चिपके किसी गम निरोधक अलबारी मित्रापन को खार से पद गोदी दी ने हमें हसा हसाकर मार ही दिया था। विधाता भी न जाने उनके लिए कहा से ऐसी विनोदपूर्ण सामग्री जुटाकर रख देता था।

स्वयं तिवारीजी की सज्जा देखकर भूख भागती थी। नित्य विदेशी पैट की घार सी बीज चमकानेवाला यह अक्लू व्यक्ति आज सिर से पैर तक पूरा पहाड़ी पिता बना था।

लाग लगाकर पहना गया पीताम्बर, कंधे पर जरी का दुसाला और लह रिया साफा चमकात वह अपनी सारी शान शोक्त ताक पर घरकर दामाद के पर धोने झुके, तो गोदी दी की भी बोलती बंद हो गई।

कसा उजला कककक दामाद मिला था तिवारीजी को। चाहते, तो जामाता के चरणयुगल धो ही नहीं, चरणामृत पान भी कर सकते थे।

हमारा पूरा मोहल्ला सास बीचे अपनी खिडकी से गोघूलि में सम्पादित यह अनुपम घुल्यध की छवि आखी ही आखी में पी रहा था कि बलमुहा नब्बू न जान कहा स आकर, हम सबके सीने में एक मोली दागकर चित कर गया। "कसा बडिया दूल्हा है नब्बू।" गोदी दी ने कहा, 'तुम्हें तो खूब नेम मिला होगा रे आज।' खेली तो तू ही कर रहा था।

'हा बीबी, नम में तो पूरी अमरीकी सोने की मुहर मिली पर दूल्हा देखने ही देखने का है—मोम का पुतला।'

"क्या?" सत्ताईस कण्ठों ने एक साथ चौंककर पूछा।

'सुबह ही हजामत बनाने गया, बीबी, तब ही समझ गया था कि दाल में कुछ काला है। एक आख काच को है बीबी।'

'चल हट।' अविश्वास से हम सबने उसे झिड़क दिया। मुझा हमेशा ऐसी ही मनहूस खबरें लाकर रंग में भग कर देता था।

क्या कल भी नई बहू को ऐसे ही बाहो मे भर सकेंगी, जैसे आज 'हाउ स्वीट !'—
कहती उससे लिपट गई थी ?

शायद नहीं

न सही

आज तो हनीसकल की मदमस्त खुशबू मे लिपटी इस परितृप्त युगल
प्रेमियो की अनोखी जोड़ी को कोई नहीं छेड़ पाएगा । आज उनकी मधुयामिनी
मे कोई बिप नहीं घोल सकेगा कोई नहीं !

